

"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

मानस तीर्थराज प्रयाग

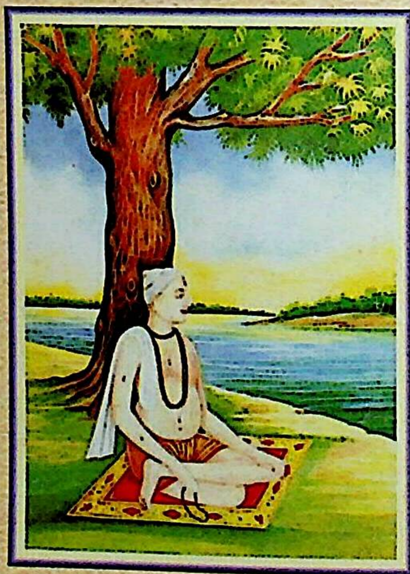
MANAS TIRTHARAJ PRAYAG

(सुन्दरकाण्डादि परिशिष्ट सहित)

सप्रेम भेंट : हांडा परिवार



भगवान् सीता-राम, लक्ष्मण एवं केवट



कविकुलचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी

9.2V2



"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"
श्रीकैलासविद्यालोकस्य चतु:सप्ततितमः (७४वाँ) सोपानः

मानस तीर्थराज प्रयाग
MANAS TIRTHARAJ PRAYAG
(सुन्दरकाण्डादि परिशिष्ट सहित)

निर्देशक
यतीन्द्रकुलतिलक श्रीदशमकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श
आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी विद्यानन्दगिरि जी महाराज
वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य



सम्पादक :
स्वर्ण लाल तुली
बी.इ.,डी.डी.इ. (न्यूज़ीलैण्ड)

प्रकाशक :—
श्री कैलासविद्या प्रकाशन
कैलास आश्रम, कैलास गेट, ऋषिकेश-२४९२०१
द्वारा कैलास विद्यातीर्थ, आदिशंकराचार्य स्मारक,
६ भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१ दूरभाष : ३३४७४७५

सौजन्य :- श्री शिवस्वरूप हाँडा सुपुत्र श्री बलवन्त राज हाँडा
हाँडा सोप फैक्टरी, पहाड़ गंज, नई दिल्ली दूरभाष : ३५२२०४९

प्रसंग :- द्वादशवर्षीय प्रयागराज पूर्ण कुम्भ पर्व

प्रथमावृत्ति : १०,००० - वि. सं. २०५७ - सन् २००१ ई.

पुस्तक प्राप्ति स्थान:-

१. श्रीकैलास आश्रम, कैलास गेट, मुनि की रेती, ऋषिकेश-२४९२०१,
दूरभाष- ०१३५-४३०५९८
२. श्री दशनाम संन्यास आश्रम, भूपतवाला, हरिद्वार-२४९४०१, दूरभाष- ०१३३-४२७२०६
३. श्री कैलास आश्रम, उजेली, उत्तरकाशी-२४९१९३, दूरभाष- ०१३७४-२२३६१
४. श्री कैलासधाम, नई झूंसी (प्रयागराज)-२२१५०६, दूरभाष- ०५३२-६६८७१८
५. श्री शंकर ब्रह्मविद्याकुटीर, ८३-ए, द्वारका पुरी, मुजफ्फर नगर-२५१००१
६. श्री राम आश्रम, समानामण्डी, पटियाला-१४७१०१, दूरभाष- ०१७६४-२०४५०
७. श्री कैलासविद्यातीर्थ (आदिशंकराचार्य स्मारक)
६, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१ दूरभाष- ०११-३३४७४७५
८. श्री कैलास आश्रम, मॉडल टाऊन, रोहतक-१२४००१
९. श्री कैलास विद्यातीर्थ, गिरियक रोड, राजगीर (नालन्दा)-८०३११६, दूर.- ०६११९-२५२८३
१०. श्री कैलास विद्याधाम, रूप नगर, जम्मू तवी-१८०००१
११. नर्मदा सत्संग आश्रम, भिलाड़िया घाट, होशंगाबाद (म.प्र.)

मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स. नवीन शाहदरा, दिल्ली-32   फोन न० 3524494



"श्री मदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

सम्पादकीय

दिशन्तु शं मे गुरुपादपांसवः

ईस्वीय काल गणना के अनुसार तृतीय सहस्राब्दि एवं इक्कीसवीं सदी का प्रथम महाकुम्भ मेला सन् २००१ में प्रयागराज में आ रहा है। पौष पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर यह पर्व माघ पूर्णिमा तक मनाया जाता है। कैलास आश्रम का शिविर इस के शाखा आश्रम कैलास धाम नई झूंसी में लगेगा। इस पावन पर्व के उपलक्ष्य में 'मानस तीर्थराज प्रयाग' ग्रन्थ लोकार्पण करने का निर्णय, भगवत्पेरणा से, श्री कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श दशम आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्त श्री विभूषित स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज ने लिया। उन्होंने कहा कि श्री रामचरितमानस में प्रयागराज का प्रसंग आठ बार कविराज गोस्वामी तुलसीदास जी ने रखा है। उन सभी स्थलों को राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं अंग्रेजी व्याख्या सहित "मानस तीर्थराज प्रयाग" ग्रन्थ में प्रस्तुत किया जावे।

तदनुसार परमेश्वर की असीमानुकम्पा से एवं महाराज श्री के शुभाशीर्वाद से यह ग्रन्थ पाठकों के समक्ष रखते हुये हमें अपार हर्ष हो रहा है।

श्री रामचरितमानस बड़ा रहस्यमय ग्रन्थ है, ऐसा विद्वान् महानुभाव एक स्वर से उद्घोषित करते हैं। जिन विद्वानों ने 'मानस' में गहरा गोता लगा लगा कर इस के रहस्यों एवं गम्भीर अर्थों की खोज करके लोक के प्रति रखा है। इन विद्वान् महापुरुषों की कई उपाधियाँ भी प्रचलित हैं जैसे मानस मर्मज्ञ, मानस वाचस्पति, मानस मराल इत्यादि। मैं इन महापुरुषों की चरण धूली को शिरोधार्य करता हुआ यह निवेदन करना चाहता हूँ कि

मैं मानस का एक साधारण पाठक हूँ। अपने 'सद्गुरुदेव' महाराज श्री की आज्ञा को शिरोधार्य कर उनके आशीर्वाद से मैंने इस ग्रन्थ के पावन प्रसंगों की व्याख्या करने का दु:साहस किया है। इस में मानस के उपर्युक्त विद्वानों की बराबरी करने की मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। हाँ इतनी बात जरूर है कि सन्त कविकुलचूड़ामणि श्री तुलसीदास जी की सूक्ति 'स्वान्त:सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा'– के अनुसार मैंने जो कुछ भी इस ग्रंथ में विवरण लिखा है उस से मुझे मन में सुख का अनुभव हुआ है। मेरे लिये सद्गुरुदेव का यही प्रसाद पर्याप्त है।

विद्वानों के कथनानुसार मैंने भी यह अनुभव करने का प्रयास किया है कि मानस में आया प्रत्येक शब्द बड़ी सावधानी से चुन कर गोस्वामी जी महाराज ने रखा है। जिस भाव से जो शब्द उन्होंने रखा है उस का वैसा अर्थ तो भगवत्कृपा से ही हृदय में प्रकाशित हो सकता है। इस की कसौटी पुन: मानस के अनन्य उपासक, भक्त एवं विद्वान् ही हैं।

जैसे अयोध्या काण्ड के मंगलाचरण के दोहा में गोस्वामी जी कहते हैं–

दो॰ श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि।।

गोस्वामी जी श्री गुरुदेव के चरणकमलों की धूलि से मन रूपी दर्पण को ठीक करके श्री रघुनाथ जी के बिमल यश को वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं, जो चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देने वाला है।

यही दोहा गोस्वामी जी महाराज ने श्री हनुमान चालीसा के प्रारम्भ में भी रखा है। वहाँ इस का अर्थ कैसे घटाया जाए, यह विचारणीय विषय है। श्री हनुमान चालीसा में तो गोस्वामी जी श्री हनुमान जी का वर्णन करने जा रहे हैं। फिर उन्होंने उपर्युक्त दोहा कैसे लिखा? सन्त महापुरुष तो जो प्रतिज्ञा करते हैं उसका अक्षरश: पालन करते हैं। क्या सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसी दास जी श्री रघुनाथ जी के यशोगान की प्रतिज्ञा

करके किसी अन्य का गुणगान प्रारम्भ करेंगे? अर्थात् बिल्कुल नहीं। तो फिर इस का क्या समाधान किया जावे? इस संबन्ध में निवेदन है कि गोस्वामी जी श्री हनुमान जी को श्री रघुनाथ जी का 'यशावतार' मानते हैं। हनुमान जी श्री रघुनाथ जी के मूर्तिमान यश हैं। "राम काज लगि तव अवतारा" श्री जाम्बवान जी के यह श्रेष्ठ वचन इसी बात को प्रमाणित करते हैं। अत: श्री हनुमान चालीसा के प्रारम्भ में जो 'बरनउँ रघुबर बिमल जसु' कहा है उसमें गोस्वामी जी ने श्री राम जी के बिमल यश-श्री हनुमान जी के वर्णन की ही प्रतिज्ञा की है। श्री हनुमान जी श्री रघुनाथ जी के बिमल यश हैं, इन शब्दों से श्री हनुमान जी के समस्त गुणों का सार गोस्वामी जी ने प्रस्तुत कर दिया है। हनुमान चालीसा में आया वर्णन इसी तथ्य का कुछ विस्तृत रूप है।

अतएव कविकुलचूड़ामणि गोस्वामी तुलसी दास जी द्वारा उद्धृत प्रत्येक शब्द दिव्य अर्थ संयुक्त होता है जिसे केवल गुरुदेव के चरणकमलों की रज से सुधारे हुये मन रूपी दर्पन से ही देखा जा सकता है। इस प्रकार के दिव्यभावयुक्त स्थल श्री रामचरितमानस में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महाराज श्री के अनन्य सेवक और हमारे परम मित्र श्री शिवस्वरूप हांडा जी ने अपनी स्वर्गीया माता जी श्रीमती राज रानी हांडा की पुण्य स्मृति में पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। हम उनको कोटिश: धन्यवाद एवं साधुवाद देते हैं।

ग्रन्थ के परिशिष्ट में सुन्दरकाण्ड, श्री हनुमान चालीसा, हनुमानाष्टक - आरती, श्री रामावतार एवं श्रीरामस्तुति भी दी गई है।

हरि ॐ तत्सत्

दीपावली वि० सं० २०५७
२६ अक्टूबर, सन् २००० ई०

गुरुपादानुरागी
स्वर्ण लाल तुली
'विद्यासदन' दिल्ली



प्रासंगिकम्

दिशन्तु शं मे गुरुपादपांसवः

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

इस श्लोक के अनुसार राम कथा एवं राम से संबन्धित अन्य कथाएँ जब नाना पुराण निगमागम सम्मत हैं तो हम क्यों न उसी दृष्टि से मानस के सभी प्रसंगों को देखें। आज हम इसी दृष्टिकोण से समाज में तीर्थराज प्रयाग का जो स्वरूप बतलाया गया है, यहाँ पर जिस रूप में गोस्वामी तुलसीदास जी ने तीर्थराज प्रयाग को देखा उसे हम भी एक बार देखें।

सामान्यतः लोग अन्य भूमि स्थलों के समान प्रयागराज भूमि को, अन्य नदियों के समान गंगादि देव नदियों को और अन्य नगरों के समान प्रयागराज नगर को भी देखा करते हैं। पर गोस्वामी तुलसीदास जी की दृष्टि इस से भिन्न है। उन्होंने रामचरितमानस के विभिन्न पात्रों के द्वारा प्रयागराज को जहाँ पर जिस रूप में उपस्थित किया है हम उन प्रसंगों को उसी रूप में पाठकों के समक्ष एक बार रखना चाहते हैं। यूँ तो प्रवचनों के द्वारा प्रयागराज की महिमा का गान अन्य विद्वान् प्रवक्ता तथा हम भी करते ही रहते हैं पर उन प्रसंगों को संग्रह करके उसी रूप में पाठकों के समक्ष रखने की अभिलाषा कई दिनों से हो रही थी। अब तृतीय सहस्राब्दी के प्रथम पूर्ण कुम्भ पर्व पर 'मानस तीर्थ प्रयाग' इस नाम से मानस पद्यों को प्रस्तुत करने जा रहे

हैं। प्रारम्भ में केवल मानस के पद्यों को संग्रह कर देना ही पर्याप्त मानते थे पर हमारी भावना को समझने वाले सम्पादक प्रो० स्वर्ण लाल तुली जी ने उन पद्यों का हिन्दी एवं अंग्रेजी में विवरण लिखना भी आवश्यक समझा और लिख भी दिया। इससे हिन्दी भाषा भाषी एवं आंग्ल भाषा भाषी पाठकों को संग्रहीत पद्यों का अर्थ समझने में अत्यन्त सौविध्य होगा। विज्ञ पाठक तो मानस के मूल पद्यों द्वारा ही अभिप्राय समझेंगे और प्रयागराज को उसी दृष्टि से देखेंगे। विवरण तो सामान्य पाठकों के लिए है।

रामचरितमानस में आठ स्थानों पर तीर्थराज प्रयाग की चर्चा आती है, उससे यह भी सिद्ध होता है कि माघ स्नान प्रति वर्ष प्राचीन काल से ही पुण्यार्थी लोग करते चले आ रहे हैं। इस माघ मेला के व्याज से जहाँ सन्तों का दर्शन, समागम तथा सेवा भक्तों को सुलभ हो जाती है, वहाँ संगम स्नान भी सुलभ होता है। मानस में माघ मकर मेला की प्राचीनता का स्पष्ट संकेत मिलता है। ऐसा ही संकेत द्वादश वर्षीय कुम्भ मेला तथा इसके अन्त:पाती अर्धकुम्भ का संकेत मिलता होता तो सभी पुण्यार्थियों को और अधिक संतोष होता।

वर्तमान समय में देव नदियों, सरोवरों, तीर्थों एवं धर्मस्थलों को जिस प्रकार प्रदूषित रूप में हम देख रहे हैं यह भी एक चिंता का विषय है। धर्माचार्य इन प्रदूषणों को दूर करने के लिये शासक एवं जनता से बार-बार कहते रहते हैं पर इस दिशा में उचित उपाय अभी तक देखने को नहीं मिलते; किन्तु इन प्रदूषणों से उक्त स्थलों को मुक्त करना आवश्यक जान पड़ता है। देव नदियों की कुक्षी में गंदगी फैलाना भी कम अपराध नहीं है। इस की ओर पुरुषों की दृष्टि ही नहीं जाती। हमारी समझ से प्राचीन काल से ऐसा क्रम नहीं रहा होगा जो आज दिखाई पड़ता है। इस मानस तीर्थराजप्रयाग पुस्तक के पद्यों

को पढ़ कर पाठक उक्त सभी समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयास करेंगे ऐसी हमारी आशा है।

आज से द्वादश वर्ष पूर्व नई झूंसी (प्रतिष्ठान पुर) में कैलास आश्रम की एक शाखा का उदय हुआ है। तब से लगभग प्रति वर्ष हम भी माघ मास में संगम का दर्शन एवं स्नान के लिये जा रहे हैं। भारत एवं प्रदेश के शासन द्वारा मेले में आने वाले समस्त स्नानार्थियों के लिये समयोचित सौविध्य पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है जो प्रशंसनीय है। यदि इन प्रबन्धों में उपर्युक्त समस्याओं का समाधान भी कर लिया जाय तो बड़ा ही अच्छा होगा। साथ ही केवल प्रचार एवं व्यापारिक दृष्टि से इस माघ मेला, पूर्णकुम्भ तथा अर्धकुम्भ का उपयोग न करके रामचरितमानस में निहित दृष्टि से प्रयागराज का सेवन किया जाय तो शास्त्र एवं लोक दृष्टि से भी आयोजन महत्वपूर्ण माना जायेगा। सभी लोग पुण्यश्लोक गोस्वामी तुलसीदास जी की दृष्टि से इस प्रयागराज को देखें इसी आशा से सभी की जानकारी के लिए इस पुस्तक के प्रकाशन का प्रयास किया गया है। इसके प्रकाशन की सेवा कैलास भक्त श्री शिव स्वरूप हांडा सुपुत्र श्री बलवन्त राज हांडा पहाड़गंज ने अपनी दिवंगत माता श्री राज रानी हांडा की पुण्य स्मृति में किया जो दूसरों के लिए प्रेरणा प्रद होगा।

कैलास विद्या प्रकाशन में कई एक नूतन सोपान जुड़ जाने से हमें भी प्रसन्नता है। हम इस के सम्पादक तुली जी एवं उनके सहायक तथा आर्थिक सेवादार श्री शिव स्वरूप हांडा की भूरिशः मंगलकामना करते हैं।

इत्योंशम्।

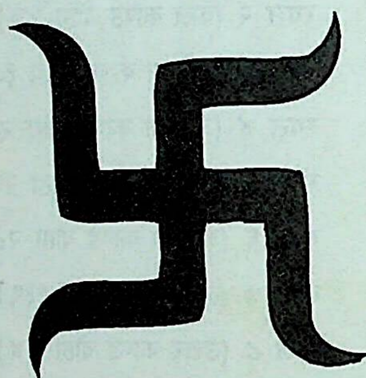
कार्तिक पूर्णिमा वि० सं० २०५७ — परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर
स्वामी विद्यानन्द गिरि

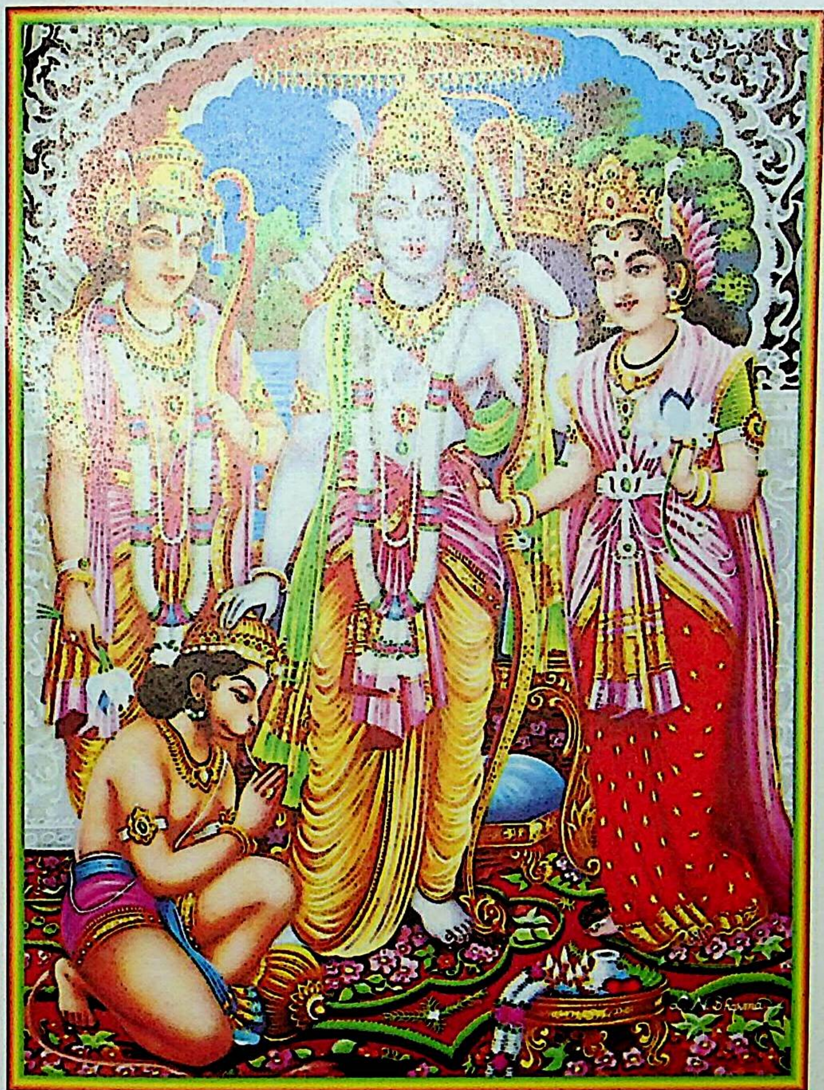


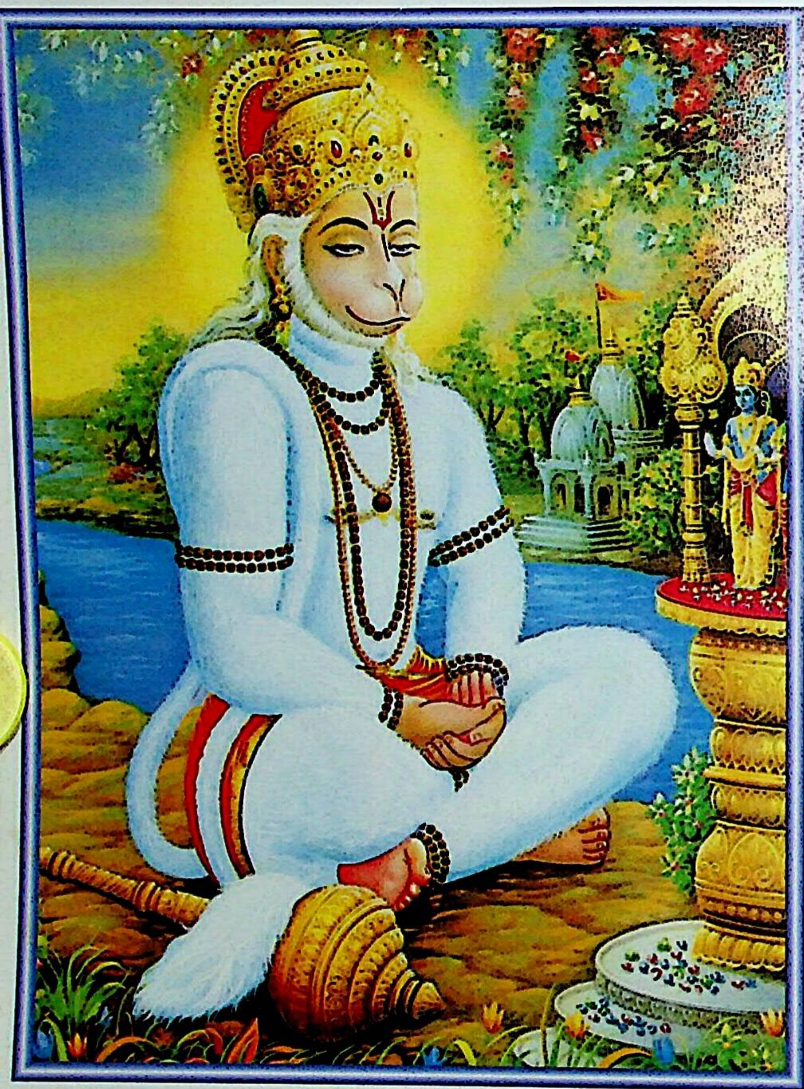
मानस तीर्थराज प्रयाग

विषयानुक्रमणिका











"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

मानस तीर्थराज प्रयाग

प्रथम स्थल

बालकाण्ड– दोहा १ से

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥१.४॥
बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदिनि बरनी।
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ॥१.५॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा।
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥१.६॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देह सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥१.७॥
दो० सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग ॥२॥

संत समाज कल्याणमय आनन्दस्वरूप हैं, जो सृष्टि में जंगम तीथराज प्रयाग हैं। उन में परमात्मा की भक्ति ही गंगा जी की धारा है। उनका ब्रह्मचिन्तन एवं प्रचार सरस्वती हैं।

भावार्थ:– संसार में आनन्दप्रद बहुत से पदार्थ हैं जो मानव को उसकी आन्तरिक स्थिति के अनुसार न्यूनाधिक आनन्द देते हैं, किन्तु वे पदार्थ आनन्दस्वरूप नहीं हैं। अत: उन से प्राप्त आनन्द क्षणिक होता है। परन्तु संत समाज कल्याणमय आनन्दस्वरूप हैं, वे ब्रह्मानन्द अथवा मोक्ष सुख प्रदान करने वाले हैं। संत समाज का अर्थ भी उपरोक्त तथ्य

****

के अनुरूप होना चाहिए। वैसे तो संत समाज का सीधा अर्थ है संत समुदाय अथवा संत मण्डली। इस संत मण्डली में कितने सन्त अभीष्ट हैं और क्या एक समूह जिसमें बहुत से लोग हैं,को एक राजा (तीर्थराज) की उपमा दी जा सकती है ? इन सब बातों पर विचार करना आवश्यक है। गोस्वामी तुलसी दास जी द्वारा मानस में उद्धृत प्रत्येक शब्द गूढ़ अर्थ रखता है। यह मानस मर्मज्ञ एक स्वर से मानते हैं। अत: 'संत समाज' शब्द का कोई गूढ़ अर्थ यहाँ अपेक्षित जान पड़ता है।

संत मण्डली के एक मुखिया या अध्यक्ष होते हैं जिसे संन्यासी समाज में मण्डलेश्वर अथवा महामण्डलेश्वर भी कहते हैं, जो शास्त्रवेत्ता ब्रह्मज्ञानी ही हुआ करते हैं। उन्हीं श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संत महापुरुष की ओर 'संत समाज' शब्द संकेत करता है। वही जंगम तीर्थराज कहलाने के सर्वथा योग्य हैं। जैसे राजा के साथ उसके मन्त्री आदि चलते हैं ऐसे ही इन जंगम तीर्थराज रूपी संतराज के साथ एक संत मण्डली होती है। ऐसे संत महापुरुषों में भगवान् जगद्गुरु आदि शंकराचार्य, गुरुनानक देव आदि कोटि के संतराज अथवा वर्तमान में जो भी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु हैं वे आते हैं। 'संतसमाज' से परिलक्षित ऐसे संतशिरोमणि ही कल्याणमय आनन्दस्वरूप हैं और वही जंगम तीर्थराज बन कर लोक को मोक्ष मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'संतसमाज' शब्द को रखकर विश्व के समस्त संतों की स्तुति करते हुये उसके लक्ष्यार्थ से श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संतराज को जंगम तीर्थराज उपाधि से समलंकृत किया है।

प्रयागराज में गंगा जी की प्रधानता है क्योंकि यमुना और सरस्वती तो गंगा जी में विलीन हो जाती हैं। उसके आगे गंगासागर तक बस गंगा जी की धारा प्रवाहित होती है। इसलिये सुसरि के साथ गोस्वामी जी ने

****

'धारा' शब्द का प्रयोग किया है। संतराज में गंगा स्थानीय राम भक्ति का प्रवाह है। आत्मानुरक्तिरूपी वृत्ति का निरन्तर प्रवाह ही उन में राम भक्ति है। उनका ब्रह्मचिन्तन तो सरस्वती की तरह गुप्त रहता है, हाँ उन का ब्रह्मनिरूपण (ब्रह्मप्रचार) मुमुक्षु साधकों के लिये अमरत्व प्रदान करता है। सरस्वती रूपी ब्रह्मप्रचार से शास्त्रज्ञान अर्थ भी द्योतित होता है जिसे संतराज संसार को प्रदान करते हैं।

भक्ति और ज्ञान को संत समाज के संग एक ही चौपाई में रख कर गोस्वामी जी यह संदेश दे रहे हैं कि भक्ति और ज्ञान अभिन्न हैं और दोनों की भूमिका संतों के जीवन में अनिवार्य है। कर्मयोग का आचरण तो महापुरुषों में केवल लोक शिक्षा के लिये होता है उसकी कुछ अन्य भूमिका उन के जीवन में नहीं रह जाती॥१.४॥

MANAS TIRTHRAJ PRAYAG

TOPIC – 1 FROM BALKANDA DOHA 1

1.4 A group of saints is a source of unearthly permanent happiness which is the supreme goal of life. It is a roving King of holy places, the Prayagraj. In them the devotion to the Lord is the flow of Ganges and the thoughts of the Lord and its description is Saraswati.

There are many things of enjoyment of varying degree in this world which give pleasure to a person according to his inner disposition. But these things by nature are not a source of abiding happiness. The saints however, offer a way of life full of supreme and permanent peace.

The meaning of the word 'group of saints' must be properly understood in the present context. How

many saints should be there in the group and whether a group can be called a king, a singular person ? Eminent scholars of Ramacharita Manas of saint Tulasidas hold the view that each and every word in this great work is carefully chosen and often has a deep hidden meaning. 'Group of saints' has a meaning other than the obvious one.

The group of saints known popularly as a 'Mandali' always has a head who is called 'Mandaleshwar' or 'Mahamandaleshwar'. This chief is a realised saint with thorough knowledge of the scriptures. The word 'group of saints' points to this very head of saints. He is fit to he called a roving king of holy places and also is a source of abiding happiness linked with realisation of God. As a king is accompanied by his ministers, so the Head saint is accompanied by a group of saints (disciples). The great saints like Adi Shankracharya, Guru Nanak Dev and enlightened and learned gurus of today come in this category, who are capable of showing and leading the aspirants on the spiritual path. The worthy poet Tulasidas on the one hand has saluted all saints, the world over by using the expression 'group of saints' and on the other he has conferred the honour of a 'Roving Prayagraj' on the learned and realised saints.

Having compared the realised saints with Prayagraj, the poet in the second line of the verse describes what constitutes the Ganges and the Saraswati in them. The devotion to Lord Rama is the flow of Ganges in the realised saints. The realised saint has a constant flow of thoughts directed to the love of the Lord synonym with

****

the devotion to the inner Self. At Prayagraj both the 'Saraswati' and 'Yamuna' merge into Ganges and further down upto 'Ganga Sagar' the flow is called Ganges only. This reveals the importance the saints attach to devotion in their life. A constant flow of Godward thougts is the essence of a saint's character. The knowledge of supreme God and its devolution to others through discourses constitutes the Saraswati in these Roving ambassadors of spiritual knowledge. The saint Poet has kept 'Group of saints', devotion (Ganga) and knowledge (Saraswati) in the first verse together, whereas the actions (Yamuna) has been mentioned in the next verse separately. This shows that the saints have a constant link with devotion and knowledge throughout their life but 'Karmayoga' (action) is practised by them only for example to the people. It, however, ceases to have any other use in their life.

संत के जीवन में रविनंदिनि यमुना जी स्थानीय विधि-निषेधमय कर्मों की कथा है जो कलियुग के पापों को दूर करने वाली है। हरिहर समन्वित् कथा तो उन सन्तों में साक्षात् त्रिवेणी है, जिसके सुनने से कल्याणमय परमानन्द प्राप्त हो जाता है।

कर्मों की कथा रविनन्दिनि यमुना जी ही होने योग्य हैं क्योंकि भगवद्गीतानुसार सूर्य को ही सर्वप्रथम कर्मयोग का उपदेश भगवान् ने किया था।

'इमं विस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्' (गी० ४.१)

विधिकर्मों का अनुष्ठान और निषेध का परित्याग करने से मन की शुद्धि होती है, यही 'कलिमल हरनी' का तात्पर्य है। निष्काम

कर्मयोग से भी अन्त: शुद्धि रूप फल मिलता है, जिससे मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इस सब का निरूपन संत महापुरुष कर्मकथा के अन्तर्गत करते हैं। तीर्थराज का महत्वबिन्दु त्रिवेणी है जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम होता है। संतराज जंगम प्रयाग का महत्वबिन्दु उन द्वारा निरूपित हरि हर समन्वित कथा है जो एकतत्त्ववाद का प्रतीक है। हरि हर में अभेद है, इसी प्रकार जगत् में जो नानात्व प्रतीत होता है वह भी 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्त्व ही है। इस वक्तव्य को श्रवण (तदुपरान्त मनन एवं निदिध्यासन) करने से सभी साधकों को परमानन्द का अनुभव होता है। गोस्वामी जी ने यहाँ भी 'मुद मंगल' शब्द का प्रयोग (जो पूर्व में 'संत समाज' के साथ किया था) करके सन्त समाज में हरि हर समन्वय पक्ष का समर्थन किया है॥१.५॥

1.5 The eloquence of enlightened saints on dos' and donts in the karma theory is rightly the Yamuna, the daughter of the Sun who was the first to receive instructions from the Lord on Karma Yoga. This fact is recalled to Arjuna by Lord Krishana in Bhagwadgita chapter IV. The rejection of actions forbidden by the scriptures and adoption of the recommended ones without attachment to their fruit is called 'Karma Yoga' which is necessary for the aspirants for the purification of the intellect for realisation of the Self. The enlightened saints however have no use for it but for setting example to others.

The point at which the three currents of Ganga, Yamuna and Saraswati meet is called 'Triveni' which is the focus of attraction and importance at Prayagraj. In the same way, the most important aspect of realised saints is their discourse on the oneness of Lord Vishnu

****

and Lord Shiva and through this the message of unity in diversity of this world. The practice of listening to such discourses followed by contemplation and meditation results in realisation of the blissful Self by all aspirants, in due course.

सन्तों की निज धर्म में अडिग स्थिति ही प्रयागराज का अक्षय वट है। सुकर्म ही इस तीर्थराज का समाज है। यह सुकर्म रूपी साधन सब को सब दिन सभी देश में सुलभ है जिस को श्रद्धा पूर्वक अपनाने से दु:खों का अन्त होता है।

निज धर्म के दो अर्थ हैं। पहला आत्मस्थिति, दूसरा शास्त्रोक्त धर्म अथवा नियम जिनका ब्रह्मज्ञानी सद्‌गुरु लोक शिक्षा के लिये दृढ़ता से पालन करते हैं। इन में आत्मस्थिति आभ्यन्तर धर्म है और नियम पालन बाह्य धर्म है।

जंगम तीर्थराज महापुरुष के संपर्क में आने वाले जो सन्त एवं भक्त हैं 'सुकरमा' शब्द द्वारा गोस्वामी जी का इन की ओर भी संकेत है। वे पुण्यकर्मा चरित्रवान् हैं क्योंकि वे ब्रह्मनिष्ठ आचार्य की छत्रछाया में हैं।

संत तत्रापि ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं। परमात्मा की असीमानुकम्पा से ही जीवन में उनका समागम होता है। अत: 'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा' का संबन्ध सन्त समाज से कदापि संभव नहीं है। इस का संबन्ध इससे तुरत पहिले आये 'सुकरमा' पद से है। यज्ञ, दान, तप रूप सुकर्म सब किसीके लिये, सभी काल सभी देश में सुलभ हैं और अवश्य कर्त्तव्य भी हैं। उन का श्रद्धापूर्वक सेवन (अनुष्ठान) ही दु:खों से छूटने का उपाय है। ईशावास्योपनिषद में ऐसा कहा भी है कि

शुभ कर्म करते हुये ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। दुःख से छूटने का यही उपाय है ॥१.६॥

1.6 The Banyan tree is the firm conviction in their divine nature and the people at Prayagraj are their good deeds. Good actions can be performed easily always at all places. Done with faith they bring an end to misery.

In place of the eternal Banyan tree at Prayagraj, the enlightened saints have firm conviction in their inner divine nature and their strict adherence to the rules of conduct prescribed in scriptures. Their pure conduct and good actions are the people who gather at Prayagraj for the holy dip. The saints and devotees who come in contact with the realised saints may also be taken as the meaning of the word 'Sukarma' – people of pious actions. Under the guidance of their guru they acquir'the reputation of people of fine conduct.

The realised saints capable of leading their followers on the path of self realisation are extremely difficult to find. They are accessible only to those blessed with the utmost grace of the Lord. Therefore what is said in the verse regarding the easy availability, any day and everywhere does not apply to the realised saints. Then what does this point to ? It may be noticed that the word 'Sukarma' meaning good deeds is placed in the end of first line of the verse. Therefore the subject of the words easily available etc. is the good deeds. All can perform good deeds all days at all places. In fact it is their duty. The Lord says in Gita, "The acts like worship, giving of alms and penance should never be abandoned being of the nature of duty." The performing of good deeds or duty with faith leads to freedom from suffering.

****

'Ishavasya' upanishad says that 'One should wish to live hundred years performing one's duties. This is the only way to ward off sin.

संतराज रूपी तीर्थराज की महिमा अकथनीय है। यह अलौकिक तीर्थराज इसी जीवन में कुछ ही काल में अथवा तत्क्षण फल देने वाला है। इस की पुष्टि के लिये शास्त्रों पुराणों में अनेक कथायें हैं। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु का समागम हो जाने पर और उनके उपदेशानुसार साधन करने पर मनुष्य के कल्याण में कोई संदेह नहीं और कोई बिलम्ब भी नहीं। इस का फल उसे इसी जीवन में प्राप्त होना निश्चित है॥ १.७ ॥

1.7 The unearthly influence and glory of a realised saint who is the roving king of holy places is indescribable. His company and adaptation of life as per his dictums yields fruit in the form of Self realisaiton in this very life, without delay. This is borne by scriptures through innummerable examples.

साधक साधुसमाज प्रयाग के मुखारबिन्द से उपदेशं श्रवण कर, उसे विचारपूर्वक समझ कर यानि मनन कर प्रसन्न (अथकित) मन से अनुरागपूर्वक इसमें निमज्जन करे यानि निदिध्यासन करे। इस प्रक्रिया से उसे इसी जीवन में चारों फल, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिल जाते हैं। मोक्ष मिल जाने पर धर्म, अर्थ, काम भी मिल जाते हैं। वास्तव में उनकी अपेक्षा ही नहीं रहती। सभी कामना पूर्ण होना या कामना समाप्त हो जाना एक ही बात है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी आशय का श्लोक दूसरे अध्याय में आता है।

****

यावानर्थ उदपाने सर्वत: सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानत:।। (२.४६)

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के मिल जाने पर जैसे छोटे जलाशय की अपेक्षा नहीं रहती वैसे ही ब्रह्म को तत्त्व से जानने वाले ब्राह्मण को वेदों की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार मोक्ष के प्राप्त हो जाने पर धर्म, अर्थ, काम की उपयोगिता नहीं रहती॥ २॥

इति प्रथमस्थल: ॥१॥

(2.) The saints in a group, constitute the roving king of Tirthas– 'Prayagraj'. We have seen that the leader of this group is a realised saint who is the focal point of this topic. Listening to his eloquence, understanding it and with a pure mind full of devotion, meditation on its essence bestows on the aspirant, in this very life, the four fold reward viz Dharma, Artha, Kama and Moksha. 'Moksha' (salvation) is the ultimate reward with which an aspirant is mainly concerned. He has not much use of other rewards except for initial cleansing of the mind. In Bhagwad Gita (2.46) it is said, "An enlightened Brahman has the same use for all the vedas as one has for a small reservoir of water in a place flooded with water on all sides. In the same way a true aspirant has no use of rewards other than union with God.

Thus ends Topic – 1



दूसरा स्थल

बालकाण्ड दो० ४३ से

प्रयागराज का प्रसंग प्रथम सन्तों की महिमा को लेकर गोस्वामी जी ने मानस में रखा। अब दूसरी बार उसे रामकथा का शुभारम्भ करते समय भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद की पृष्ठभूमिका में प्रस्तुत करते हैं।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि रामपद अति अनुरागा।
तापस सम दम दयानिधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥४३.१॥
माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई।
देव दनुज किन्नर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥४३.२॥
पूजहिं माधवपद जलजाता, परिस अखय बटु हरषहिं गाता।
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥४३.३॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा॥४३.४॥
दो० ब्रह्मनिरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥४४॥
एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं।
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहि मुनिबृन्दा॥४४.१॥
एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥४४.२॥
सादर चरण सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे।
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बाणी॥४४.३॥
नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत वेदतत्त्व सबु तोरें।
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥४४.४॥

भरद्वाज मुनि तीर्थराज प्रयाग में रहते थे। वे उच्चकोटि के साधक संत थे। स्थावर प्रयाग की पावन भूमि पर वे परमार्थ साधना में रत थे।

****

परमेश्वर के प्रति उनके मनमें अत्यधिक अनुराग था। तपसे उन्होंने मन और इन्द्रियों को पूरी तरह संयमित कर रखा था और प्राणीमात्र पर दया उन का स्वभाव बन चुका था। परमार्थ पथ पर परम विवेक से वे चल रहे थे॥ ४३.१॥

TOPIC – 2 FROM BALAKANDA DOHA 43

43.1 Bhardwaj Muni lived at Prayagraj. He was an aspirant saint of a very high order. Residing in the holiest place he was deeply absorbed in his spiritual practices. He had developed extreme love for the Lord. Through penances he had completely controlled his mind and senses. He was full of mercy for all creatures and was treading the spiritual path with great wisdom.

जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है तो सौर माघ मास प्रारम्भ होता है जो प्रायशः १४ जनवरी को प्रतिवर्ष होता है। उस समय सब कोई तीर्थराज प्रयागय में आते हैं। उनमें देवता, दानव, किन्नर (अमानव) और मनुष्यों के समूह के समूह शामिल हैं। ये सभी बड़े आदर से त्रिवेणी में स्नान करते हैं। धन्य है भारत वर्ष और उसमें प्रयागादि तीर्थ जहाँ मनुष्य ही नहीं स्वर्ग एवं पाताल के देवता और दानव भी आकर सादर स्नान करते हैं। यह धरती के सभी मानवों को निमन्त्रण के रूप में गोस्वामी जी का कथन है कि ऐ धरती के मानवों! तुम भी तीर्थों में आकर स्नानादि का लाभ लो॥ ४३.२॥

43.2 When the sun enters the 'Makar Rashi', the month Magha according to sun calendar begins. This usually happens on 14 January every year. That period is auspicious for dip in 'Triveni'. Therefore everybody visits Prayagraj at that time. Among the pilgrims are not only multitude of human beings but the gods and

'kinnaras' from heaven and 'danavas' as well. The worthy saint poet through this verse conveys a message to all the human beings to take advantage of the holy places on earth.

प्रयागराज में यात्री श्री बेणीमाधव जी के चरणकमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्शकर उनके शरीर पुलकित होते हैं।

देव दानव मानव सभी को उस परमानन्द की खोज है जिससे देहधारण रूप संसार की निवृत्ति हो। राम कथा रूप परमात्म निरूपन, वह भी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संत के मुखारबिन्द से सुनना ही उसका उपाय है। राम कथा श्रवण की भूमिका में जो साधन आवश्यक हैं गोस्वामी जी प्रयागराज के व्याज से उस का वर्णन कर रहे हैं। जब राग द्वेष रूपी मकर के दो जबड़ों में सूर्य यानि प्रकाश का प्रवेश होता है अथवा उनका विवेक साधक के जीवन में होता है तब वह उनके वशीभूत होकर पाप नहीं करता यही माघ मास है। तब तीर्थपति संतराज के शरण में जाता है और जीवन को उनकी त्रिवेणी में (भक्ति, ब्रह्मविचार निष्काम शुभकर्म) वह डुबोता है। तब विश्वास रूपी अक्ष्य वट से जुड़ कर परमात्मा के पद की समर्चना करता है अथवा उनकी शरण में हो जाता है।

भरद्वाज जी का आश्रम अति पावन है। इतना सुन्दर है कि मुनिवरों के मन को भी अच्छा लगता है।

भरद्वाज जी के आश्रम से साधक की साधना की ओर संकेत है कि उस से साधक का अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो गया है। उस की रमणीयता गुरुदेव के मन को भी सुहाती है॥ ४३.३ ॥

43.3 Those who visit Prayagraj do worship the lotus feet of Shri Veni Madhav and enjoy the touch of the

****

eternal Banyan tree. The significance of the visit to Prayagraj during this month in the life of an aspirant is that during the month of Magh the sun remains in the Makar (crocodile) Rashi. The two jaws of the crocodile are the attachment and revulsion. The sun provides the light of wisdom to know them and destroy the duo. Then one can expect a fault free routine which is the month 'Magh' meaning without sin. Having removed the stigma of sins one should visit some realised saint nicknamed as the roving king of holy places and should submerge one's ego in the Triveni of their character viz devotion, knowledge and pious action. Then with firm conviction (touch of sacred Banyan tree) and faith one should dedicate oneself to the lotus feet of the Lord (Veni madhav)

The mention of extreme piousness of the Ashram (Hermitage) of Bhardwaj points to the pious life of the aspirant. His mind has become so pure that even the realised saints like it and praise it.

भरद्वाज जी के आश्रम पर मुनि ऋषियों का समाज एकत्रित होता, वही समाज जो तीर्थराज में स्नान करने जाते हैं। वे प्रात: काल सोत्साह स्नान करते हैं और आपस में परमात्मा के गुणों की चर्चा करते हैं।

जो सन्तराज रूप तीर्थराज में स्नान करने वहाँ जाते हैं उनके लिये भरद्वाज जी का आश्रम ही गन्तव्य है क्योंकि वहाँ ही ऋषिमण्डली, मुनिमण्डली में ब्रह्मनिष्ठ सन्तों के दर्शन होंगे। प्रात: काल वे उन संतराज से सत्संग बड़े उत्साह से श्रवण करते हैं। फिर परस्पर परमात्मा के गुणों पर चर्चा करते हैं। वहाँ और क्या क्या होता है इसे अगले दोहे में कहते हैं॥ ४३.४ ॥

****

43.4 The Munis and Rishis (all saints) assemble at the Hermitage of Muni Bhardwaj. Therefore the aspirants who would like to have contact with the realised saints converge on to that hermitage. In the morning they listen to the discourses of those great saints which is like taking dip in Triveni and then they discuss among themselves the various qualities and characteristics relating to God. What else do they do there is described in the next Doha.

वहाँ वे ऋषिराजों से ब्रह्म के बारे में श्रवण करते हैं, धर्म की विधि के बारे, तत्त्व के क्या-क्या विभाग हैं, भगवान् की भक्ति के बारे में जो ज्ञान वैराग्य से जुड़ी हुई है, इनका श्रवण करते हैं। संतराज में जो पूर्व कथित भक्ति ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी है उसी में साधक गोता लगाते हैं ॥ ४४ ॥

44 At the Ashram of Muni Bhardwaj the aspirants listen to the eloquence on supreme God, the methodology of religious practices, the division imagined in the single Truth, the path of devotion to God linked with wisdom and renunciation. In fact this is precisely the three fold description of the roving king of holy places viz the realised saint.

इस प्रकार साधक, महापुरुषों के संगसे भली प्रकार पापों का परिमार्जन कर पुनः अपनी अपनी साधना में लग जाते हैं यही उन का निज निज आश्रम जाना है। ऐसा आनन्द वे प्रतिवर्ष लेते हैं यानी महापुरुषों का संग वर्ष में कम से कम एक मास करने का संकेत है।

गोस्वामी जी ने पूर्व भरि माघ नहाहीं कह कर पूर्णतया निष्पापता सम्पादन का कथन किया परन्तु कुछ ही समय तक ही पाप न करने

****

का संकल्प ठीक रहता है, वह भी महापुरुषों की छत्रछाया में। पुन: रागद्वेष के कारण पूर्ववत् जीवन बीतने लगता है। अत: साधक को नियमत: वर्ष में कमसे कम एक बार एक मास अथवा एक पक्ष महापुरुषों के संनिकट निवास कर रागद्वेष रूपी मकर को डुबो कर वहाँ से लौटना चाहिये। इसीलिये दूसरी बार गोस्वामी जी ने मकर मज्जि शब्द का प्रयोग किया है॥ ४४.१ ॥

44.1 In this way the aspirants in the company of realised saints wash off their sins fully and then return to their abode for individual efforts. However, the attachment and revulsion inherent in their nature again dominate their mind, thereby requiring cleansing regularly. In a year at least a month should be spent in the service of the realised saints. The visit to them every year destroys sins and yields happiness. The aspirants drown their attachment and revulsion in the 'Triveni' of the realised saints.

एक बार जब सत्संगद्वारा भरद्वाज जी का राग द्वेष पूरी तरह नष्ट हो गया और सब मुनीस्वर अपने स्थानों को पधार गये तो भरद्वाज जी ने परमज्ञानी याज्ञवल्क्य जी को सद्‌गुरु के रूप में वरण कर उनके चरण पकड़ उनको कुछ रुकने के लिये राजी कर लिया॥ ४४.२ ॥

44.2 Once when Bhardwaj Muni overcame completely the duo of attachment and revulsion and all the realised saints had left, he fell at the feet of the wisest saint Yagyavalkya and requested him to stay back. The request was granted as Bhardwaj had attained the state for further instructions by a Guru.

****

इसमें गोस्वामी जी ने गुरु से उपदेश लेने की विधि का निर्देश किया है। भरद्वाज जी ने गुरुदेव के चरणकमल बड़े आदर से धोये और उनको एक अति पवित्र आसन पर बैठाया। जो आसन किसी और के प्रयोग में न आया हो और केवल गुरुदेव के लिये सुरक्षित पवित्र स्थान पर रखा हो उसे ही अति पुनीत समझना चाहिये। गुरुदेव की पूजा करके उन की स्तुति भरद्वाज मुनि ने की। तब अति मीठे अति विनम्र अति पुनीत (क्योंकि उस में परमात्मा की कथा संबन्धी प्रश्न था) वाणी का उच्चारण किया। भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता में जो कहा है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनःस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गी० ४.३४)

'उस ज्ञान को प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा द्वारा तुम जानो, वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुझको ज्ञान का उपदेश करेंगे।'

उसी का व्याख्यान गोस्वामी जी ने यहाँ अति उपयुक्त वचनों से किया है॥ ४४.३॥

44.3 The method of approaching the guru for removal of any doubts or for obtaining instructions in the course of 'Sadhana' is described in this verse. The lotus feet of the guru should he washed with respect (and dried with a clean towel). Bhardwaj Muni did the same to his guru Yagyavalkya ji. He offered an extremely pure seat for the guru. Then he worshipped him (by applying tilak, offering flowers or garland and burning a lamp and camphor while reciting appropriate Mantras). Then Bhardwaj ji sang praises of the guru. After doing all this and finding an appropriate moment, Bhardwaj ji opened

****

his mind with extremely pious and sweet words. Similar instructions about approaching the guru are contained in Geeta chapter IV sloka 34.

भरद्वाज जी ने कहा हे नाथ ! मुझे एक बहुत बड़ा संशय है जिसे आप ही निवारण कर सकते हैं क्योंकि सम्पूर्ण वेदों पर आप का पूर्ण अधिकार है। यद्यपि उस संशय को बताने में मुझे भय तथा लज्जा का अनुभव हो रहा है फिर भी यदि नहीं कहता तो मेरी बड़ी हानि हो सकती है। कितनी सरलता और विनम्रता भरद्वाज जी के वचनों में है, इस ओर साधकों को अवश्य ध्यान देना चाहिये।

इसी के साथ मानस तीर्थराज प्रयाग का दूसरा प्रसंग यहीं समाप्त करते हैं॥ ४४.४ ॥

इति द्वितीयस्थलः ॥ २ ॥

44.4 Bhardwaj ji said, "O, master! I have a serious doubt in my mind which only your grace can remove as you have mastery over all the Vedas. Even though I am affraid and feel ashamed to express it but not doing so may result in great harm to my spiritual practices.

This ends the discussion of the second context of Tirtharaj Prayag in Ramcharitmanas.

Thus ends Topic – 2



तीसरा स्थल

अयोध्या काण्ड दो० १०४ से

दो० तब गणपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू।
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥ १०४.१ ॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी।
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥१०४.२॥
छेत्रु अगम गढु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा।
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥१०४.३॥
संगमु सिंहासन सुठि सोहा। छत्रु अखय बटु मुनि मनु मोहा।
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥१०४.४॥
दो० सेवहिं सुकृति साधु सुचि पावहिं सब मन काम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥ १०५ ॥
को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।
अस तीरथ पति देखि सुहावा। सुखसागर रघुबर सुखु पावा ॥१०५.१॥
कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई।
करि प्रणाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥१०५.२॥
ऐहि बिधि आई बिलोकि बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ॥१०५.३॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई ॥१०५.४॥
दो० दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि ॥ १०६ ॥
कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे।
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ आमी के ॥१०६.१॥

****

सिय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए ।
भए विगतश्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥१०६.२॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू ।
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ॥१०६.३॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी ।
अब करि कृपा देहु बार एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥ १०६.४॥
दो० करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार ॥ १०७ ॥
सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने ।
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा ॥ १०७.१॥
सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू ।
मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं ॥१०७.२॥
यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी।
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए ॥१०७.३॥
राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोचन लाहू ।
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई ॥१०७.४॥
दो० राम कीन्ह विश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥ १०८ ॥

केवट को कृतार्थ कर, सखा निषादराज को साथ ले कर प्रभु श्रीराम श्री जानकी जी और लक्ष्मण जी ने गंगा जी को प्रणाम कर बन को गमन किया। इस दिन वृक्ष के नीचे निवास़ हुआ। लक्ष्मण जी और सखा निषाद राज ने विश्राम एवं फलाहार की सब व्यवस्था कर दी। इस से पूर्व की दो रात्रि प्रभु श्रीराम ने तमसा के तट पर और दूसरी श्रृंगबेरपुर में बिताई। इस से आगे ही प्रभु की वन यात्रा प्रारम्भ होती है। "बिटप तर बासू" प्रभु की वन में प्रथम रात्रि बिताने का प्रतीक

है। 'बन गवनु कीन्ह रघुनाथ' कह कर भी उपरोक्त दोहे में प्रभु के अयोध्या छोड़ने के बाद बन गवन का पहली बार गोस्वामी जी ने प्रयोग किया है। प्रात: काल भगवान् रघुनाथ जी जब नित्यक्रिया से निवृत्त हुए तो तीर्थराज उन के दर्शनों को आए।

'तीरथराजु दीख प्रभु जाई' के दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो भगवान् ने जाकर तीर्थराज के दर्शन किये; दूसरा तीर्थराज ने जाकर प्रभु श्री राम के दर्शन किये। दीख क्रिया का प्रयोग और रघुराई के बाद पुन: प्रभु शब्द का प्रयोग एवं इस के बाद में आये वर्णन से यह जान पड़ता है कि तीर्थराज ने जाकर प्रभु के दर्शन किये, यह अधिक उपयुक्त है। भगवान् के वन प्रवेंश के बाद सब से पहले यदि कोई उन से मिलने आया है तो वह तीर्थराज प्रयाग है। प्रात: काल जब भगवान् राम स्नान संध्या बन्दन आदि प्रात:कृत से निवृत्त हुये तो तीर्थराज ने वहां जाकर प्रभु के दर्शन किये। तीर्थराज की महिमा और विशेषता का यह भी कारण है कि वे सदा भगवान् के चिन्तन में निमग्न रहते हैं। प्रथम अवसर मिलते ही उन्होंने भगवान् श्री राम के दर्शन किये जबकि अन्य ऋषि मुनि देवता विद्वानों आदि ने बाद में भगवान् के दर्शन किये ॥ १०४.१ ॥

104, The third reference to Prayagraj in Ramcharit Manas is when Lord Rama himself alongwith Sri Sita, Laxman and Guhu visits the king of holy places. After leaving Ayodhya Lord Rama spent the first night at the bank of 'Tamsa'. He had to leave in midst of night secretly leaving the multitude of people unawares. Second night was spent at Sringberpur where Guhu, the head of 'Nishadas' provided best possible service. Next

****

day Sri Rama entered the forest and that night was spent under a tree in the forest surroundings. Laxman and Guhu made arrangements for dinner and sleep in tune with the vow of the Lord not to eat any cereals. The following morning as Sri Rama finished his daily morning routine the king of holy places, Prayagraj went (possibly in the form of a god) to greet and pay his respects to the Lord. This was a very thoughtful gesture on his part as he became the first to meet the Lord in his voyage to the forest. This provides the clue as to why Prayagraj became as great a holy place, infact the king of the holy places. This is because he is devoted to the Lord very firmly without forgetting his presence for even a moment.

One may also interpret the couplet to show that it was the Lord himself who went to Prayagraj. But going through the description in this and the following verse it seems more appropriate that Prayagraj came and met the Lord. As per the style of Saint poet the Lord after the morning routine would not have suddenly gone and seen the Prayagraj without involving the the names of Sita, Laxman and Guhu in some way.

तीर्थराज प्रयाग क्यों श्रेष्ठ हैं इस को कविराज गोस्वामी तुलसीदास जी चित्रित करते हैं। वे राजा हैं। उनका सत्य ही सचिव है जो सदा उन के साथ रहता है। श्रद्धा उन की प्रिय अर्धांगिनी है। भगवान् बेनी माधव ही उन के मित्र हैं जो सदा उन का हित चाहते तथा करते हैं। जिस पुरुषविशेष के पास सत्य, श्रद्धा, ईश्वर परायणता हो, वही श्रेष्ठता की कसौटी पर खरा उतरेगा। उन का खजाना चार पदार्थ धर्म, अर्थ,

****

काम, मोक्ष जो मनुष्य की इच्छा के विषय हो सकते हैं, उन से भरा हुआ है। उनका प्रदेस तो पुण्यमय सलिल है और देस वन, वाटिका ऋषि आश्रमों इत्यादि के कारण अत्यन्त सुन्दर है॥१०४.२॥

104.2 Why Prayagraj the king of holy places, is considered holiest ? This would be explained by the following characteristics mentioned by the saint poet Goswami Tulasidas ji. Being a king, Prayagraj has 'Truth' as his secretary who always remains with him. Faith is the loving better half of Prayagraj. Lord 'Beni Madhav' is his true friend providing support in everyway. In other words, one who is truthful, has deep faith and considers God as his support (in all good actions) is fit to be called holiest.

Prayagraj has a treasury full of Dharma, Artha, Kama and Moksha the four fold aspiration of all human beings. His province is the holy waters and his domain is the most beautiful surrounding forest, gardens and the hermits of saints.

प्रयागराज की भूमि पाप समूहों की पहुँच से बाहर है क्योंकि पुण्यमय यहाँ का किला बहुत मज़बूत और सुन्दर है। यहाँ पाप रूपी शत्रु स्वप्न में भी प्रवेश नहीं कर सकता। प्रकाश में क्या अंधकार प्रवेश कर सकता है ? यहाँ से निराश हो पापों की सेना अन्य तीर्थों पर धावा बोले तो वहाँ तीर्थराज प्रयाग के सैनिक जो अन्य सब तीर्थ हैं वह अच्छे रनधीर वीर हैं और पाप की सेना को पराजित कर देते हैं।

जब ऐसी बात है तो तीर्थ यात्रा से लोगों के दुःख दूर क्यों नहीं होते, उल्टे ऐसे लगता है कि उन के पाप आगे से भी अधिक हो गये हैं।

****

इस का कारण यह है कि लोग तीर्थों के नियमों का पालन नहीं करते। तीर्थ में गंदगी फैलाना, थूकना, साबुन लगाना, कपड़ा धोना जैसी छोटी बातें भी पाप को जन्म देती हैं। साधारण पाप भी तीर्थों में किये जाने पर अधिक होकर फल देते हैं॥१०४.३॥

104.3 The land of Prayagraj is so pious that it is beyond the reach of sins. Its beautiful Fort is very strong. The enemy cannot even dream of entering into it. The army of sins finding no entry here try to tackle the other holy places, but these being brave stiff soldiers of Prayagraj, the army of sins have to taste a crushing defeat at their hands.

Being so, then why people remain miserable and in fact seem to gather more sins day by day. The reason seems to be that people who go to holy places to wash off their sins do not observe rules of that holyplace. Therefore they gather more sins than they leave. Even small things like spitting in the holy water, washing clothes, applying soap, urinating etc. generate sins.

तीर्थराज का सिंहासन अत्यन्त सुन्दर संगम स्थल ही है जहाँ तीर्थराज विराजमान होते हैं। जो वहाँ अक्षय बट है वह मानो तीर्थराज के ऊपर सुहावना छत्र है जिसे निहार कर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं।

गंगा और यमुना सितासित तरंग हैं, वही दो चँवर झुला रहे जैसे हैं। उन्हें देखने मात्र से दुःख और दरिद्रता का नाश हो जाता है। जब साधक की दृष्टि विषयों से हट कर भक्ति (गंगा) और कर्मयोग (यमुना) पर जमती है तो विषयों के भोग से होने वाली बेचैनी और मन की कृपणता नष्ट हो जाती है॥१०४.४॥

****

104.4 The throne of the king Prayagraj is rightly the beautiful place where the three holy rivers meet. The eternal Banyan tree is the most fascinating umbrella seeing which the mind of even the Munis is attracted.

The waves of the rivers Ganges and Yamuna serve like the two fans seeing which misery and pity disappear. Having abandoned the thoughts of sense objects, when an aspirant fixes his mind on devotion (Ganga) and 'karmayoga' (Yamuna) then he is saved from the misery resulting from contact with the sense enjoyments and petty mentalism.

यह दोहा स्थावर एवं जंगम तीर्थराज के लिये गोस्वामी जी ने लिखा है। संतराज प्रयाग की सेवा कर पुण्यात्मा, पवित्र साधु साधक अपना अभीष्ट फल आत्म सक्षात्कार प्राप्त करते हैं। ऐसे महापुरुषों के पवित्र गुणों का गान वेद पुराण ऐसे करते हैं जैसे राजा के गुण बंदी लोग गाते हैं। तीर्थराज प्रयाग में निवास कर और उस का सेवन यानि उस में स्नान करके भी नर मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेते हैं अनुबन्ध यही है कि वह नर पुण्यकर्मा हो, साधु स्वभाव हो और बाह्य-भीतर से पवित्र हो। तीर्थराज प्रयाग के गुणसमूहों का वर्णन भी शास्त्रों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। श्रीरामचरितमानस में ही आठ स्थानों पर वर्णन मिलता है। प्रस्तुत प्रसंग में साक्षात् भगवान् श्री राम के मुखारबिन्द से ही तीर्थराज की महिमा का गान हम श्रवण करेंगे।। १०५।।

105 These lines are aimed at both fixed and roving Prayagraj. An aspirant who is performing pious deeds, is a gentleman, is pure in both body and soul and remains in the service of the realised saint is sure to get the desired reward of self realisation. The glory of such

****

realised saints is amply sung by 'Vedas' and 'Puranas' as is done for the king by his couriers.

In the case of Prayagraj the pilgrims can achieve the desired rewards provided they are backed by good deeds, have saint like qualities and are pure from within and outside. The glory of Prayagraj is also sung by the scriptures. Even in Ramcharitmanas its mention occurs eight times. In the present context Lord Rama himself would sing the glory of Prayagraj.

गोस्वामी तुलसीदास जी प्रयाग महिमा प्रसंग को पूर्ण करते हुये यह निष्कर्ष निकालते हैं कि तीर्थराज का प्रभाव अकथनीय है। पाप समूह रूप हाथी के लिये तीर्थराज प्रयाग मृगराज सिंह के समान हैं। यही उपमा जंगम तीर्थराज के लिये भी समझनी चाहिये। उनकी महिमा भी अकथनीय है और वे भी सिंह की तरह दोषसमूह रूपी हाथी पर हावी हैं। ऐसे सुन्दर तीर्थपति प्रयाग को देख कर सुखसागर भगवान् राम ने सुख का अनुभव किया यानि उस पर प्रसन्न हुये ॥ १०५.१ ॥

105.1 In the finale of the topic on the glory of Prayagraj, Goswami Tulasidas ji says, "The influence of Prayagraj is beyond description. It is like a lion to the elephant of sins. The same is true for the realised saint which we have been discussing in parallel to the immoveable Prayagraj. Lord Rama the ocean of happiness, on seeing Prayagraj, was pleased which meant so very great for Prayagraj. Thus his going to Shri Rama was amply rewarded.

प्रभु श्री राम प्रयागराज पर इतने प्रसन्न हुये कि अपने मुखारबिन्द से श्री सीता जी, लक्ष्मण जी और सखा गुहु को सुनाते हुये तीर्थराज की

****

बड़ाई करने लगे। तदनन्तर मर्यादा पुरुषोत्तम ने तीर्थराज को प्रणाम कर वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में भगवान् बन और बाग देखते हुये बड़े प्रेम से उन स्थानों का माहात्म्य कहते हुये चल रहे हैं ॥१०५.२॥

105.2 Lord Rama was so much pleased with the (behaviour of) Prayagraj that addressing Sita, Laxman and friend guhu with his pious voice, He eulogized Prayagraj. Thereafter the meticulous observer of rules enshrined in the scriptures, Lord Rama offered obeisance to him and set out further from there. On the way gazing at the forest and gardens Lord Rama full of compassion narrated the importance of those places.

इस प्रकार भवगवान् राम ने आकर त्रिवेणी संगम के दर्शन किये जिस का स्मरण मात्र ही सब प्रकार के मंगल (कल्याण) को देने वाला है। यहाँ "आई" क्रिया का प्रयोग द्रष्टव्य है। इस प्रसंग के प्रारम्भ में प्रयोग था "तीरथराज दीख प्रभु जाई" जिस का अर्थ हमने किया था कि तीर्थराज ने जाकर प्रभुके दर्शन किये। यदि हम उस का अर्थ प्रभु ने जाकर तीर्थराज के दर्शन किये करते तो यहाँ उसी दिशा में भगवान् के प्रस्थान को 'आई' क्रिया से सूचित नहीं करते। अत: वहाँ तीर्थराज ने अपने आधिदैविक रूप में जाकर प्रभु के दर्शन करके अपनी प्रभु परायणता को प्रकट किया।

प्रभु श्री राम ने आनन्द से त्रिवेणी में स्नान किया और शिव जी की सेवा की। सिव सेवा का अर्थ कल्याणमयी सेवा भी कर सकते हैं जिस का अर्थ है ब्राह्मण, दरिद्रादि पात्रों को दानादि की सेवा। फिर प्रभु ने विधिपूर्वक तीर्थ के देवताओं का पूजन किया क्योंकि प्रभु मर्यादा पालन में अत्यन्त पटु हैं ॥१०५.३॥

****

105.3 In this manner Lord came and saw the 'Triveni' (the meeting point of the three Holy Rivers) the very thought of which bestows all sorts of rewards. Here the verb 'came' is noteworthy. In the beginning of this topic the words used were 'Prayagraj went to see Lord Rama'. If we had interpreted that Lord Rama had gone to see Prayagraj, then in this verse also the verb 'go' would have been used by the saint Poet. Therefore what we have interpreted that Prayagraj in his godly form went to see the Lord seems to be appropriate.

तदनन्तर प्रभु श्री राम भरद्वाज मुनि के पास आये। आते ही मुनि को दंडवत प्रणाम किया। मुनि ने प्रभु को हृदय से लगा लिया। मुनि के मन में आनन्द हिलोरे ले रहा था मानो ब्रह्मानन्द रूपी खजाना उनके हाथ लग गया हो। शब्द की गति वहाँ नहीं होने से मुनि कुछ कह नहीं सके ॥ १०५.४ ॥

105.4 Thereafter Lord Rama came to Bhardwaj Muni. Always aware of the rules of scriptures, the Lord paid obeisance to the Munis by lying straight on earth with chest down which is called 'Dand Pranama'. Muni Bhardwaj embraced the Lord. His heart was full of ecstacy as if he had found the treasure of the supreme Bliss. That state being beyond words he could not speak anything.

मुनीस भरद्वाज जी ने आशीर्वाद दिया। उनके हृदय में यह जान कर अत्यन्त आनन्द हुआ कि आज विधाता उन पर इतना प्रसन्न है कि उन्होनें सम्पूर्ण पुण्यों के फल को लाकर मानो उनके आँखों के सामने खड़ा कर दिया है। जगत् में जितने भी पुण्यकर्मों का सृजन विधाता ने

किया है उनका एक मात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। यही उनका चर्म फल विधाता ने निश्चित किया है। अतएव जब भगवान् श्री राम के दर्शन मुनि भारद्वाज जी को हुये तो उन की उपरोक्त उत्प्रेक्षा उचित ही है। मुनि भगद्दर्शन का श्रेय अपनी साधना को न देकर विधाता ईश्वर की कृपा को दे रहे हैं जो उन की निरभिमानता का सूचक है॥१०६॥

106 As customary the great among the Munis blessed the Lord. He felt immense pleasure in the heart to think that God had been so kind to him that He had himself paid him a visit as if the fruit of all good deeds has come and stood before his eyes. The culmination of all good actions is in the realisation of God. So Muni Bhardwaj was extremely happy to achieve his goal but he did not take the credit of performing such deeds himself which points to his mastery over ego.

मुनि भरद्वाज ने प्रभु से कुशल पूछी और बैठने के लिये आसन दिये। फिर प्रेम पूर्वक उनका पूजन किया। प्रभु इस आतिथेय से अत्यन्त संतुष्ट हुये। मानो अमृत के हों ऐसे अच्छे कंद मूल फल और अंकुर मुनि ने स्वयं ला कर भगवान् को अर्पित किये। भारतीय संस्कृति में घर आये महमान का किस प्रकार स्वागत किया जाता है इस का आदर्श यहाँ प्रस्तुत किया गया है॥१०६.१॥

106.1 The Muni enquired about their wellbeing and offered seats. Then he worshipped the Lord with devotion. The Lord was extremely satisfied with these gestures. The Muni brought quality roots, fruits and sprouts of nectar like taste and offered to the Lord. The guest is considered a V.I.P. in the Indian tradition and he is given the best possible attention. Here the Lord was

****

not only a guest but also the deity of his choice and the fruit of all religious practices which the Muni had been doing for a long span of life.

श्री सीता जी, लक्ष्मण जी और जन गुह के सहित भगवान् राम ने अत्यन्त स्वादपूर्वक उन सुन्दर मूल और फलों का आहार किया। मुनि भरद्वाज जी ने और भगवान् राम ने निषादराज को वही आदर दिया जो श्री सीता और लक्ष्मण जी को प्राप्त हुआ। इस में जो उदार भावना भरी हुई है वह एक आदर्श के स्थापन की ओर संकेत कर रही है।

भगवान् की विश्राम करने से जब थकावट दूर हो गई और वे सुखपूर्वक बैठे तब भरद्वाज मुनि ने उनसे वार्तालाप करने के लिये कोमल वचनों का उच्चारण किया। इस में भी एक मर्यादा का संकेत मिल रहा है। किसी विशिष्ट व्यक्ति के पधारने पर तुरंत उन्हें वार्तालाप में उलझाने की जगह पहिले उन का स्वागत सत्कार भोजन विश्राम आदि का ध्यान करना चाहिए। ऐसा हो जाने के बाद ही उनसे बात चीत करनी चाहिए यानि अतिथि के आराम का पूरा ध्यान रखना चाहिये। बातचीत कोमल वचनों द्वारा होनी चाहिए॥ १०६.२ ॥

106.2 Shri Rama alongwith Sita, Laxman and Guhu ate the fine fruits and roots with immense liking. The message to be grasped is that the host as well as the chief guest gave the same treatment to Guhu, the low caste as to Sita and Laxman.

Lord Rama after taking some rest got rid of tiredness and felt comfortable. Then Muni Bhardwaj wishing to start a conversation spoke soft words. Here again there is a lesson to be learnt that guest should not be engaged in unnecessary conversation just upon

****

his arrival. But he should first be made to feel comfortable.

मुनि भरद्वाज जी ने उपरोक्त दोहे में जो मन में विचारा था कि 'विधाता परमेश्वर ने सभी सुकृतों का फल भगवान् राम के दर्शन के रूप में आज हमें प्रदान किया है'। उसी की व्याख्या अब वे अपने श्रेष्ठ वचनों द्वारा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि हे राम! मैं आज आप के दर्शन पाता हुआ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि हमारी तपस्या, तीर्थसेवन और त्याग का आज अच्छा फल हमें मिला। आज ही हमारे जप, योग, वैराग्य का भी शुभ फल मिला। आज हमारे द्वारा किये गये समस्त शुभ साधनों के समुदाय का फल हमें प्राप्त हो गया' ॥१०६.३॥

106.3 What Muni Bhardwaj had thought in essence in the preceding Doha that God had brought the fruit of all good actions before his eyes in the form of Lord Rama, he now dwells on it in more detail. The Muni said to Shri Rama "Today I have received good return for penances, holy dips, renunciation, Japa, Yoga and dispassion. All the spiritual practices have borne fruit today, as I see you closely today."

जैसा भगवद्गीता में कहा गया है–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः (गीता ६.२२)

'जिसको प्राप्त कर उस से बड़ा लाभ नहीं मानता' भगवद्गीता के इन वचनों के अनुसार ही मुनि कहते हैं कि 'आप का दर्शन लाभ की सीमा है, सुख की सीमा भी कोई दूसरी नहीं है। मेरी सब इच्छाओं की पूर्ति आप के दर्शन से हो गई। अब आप कृपापूर्वक यही वरदान दीजिए कि आप के चरणकमलों में मेरा सहज स्नेह होवे'। भक्त का भगवान्

****

के चरणों में स्नेह तो होता ही है परन्तु उसके लिये उसे वृत्ति बनानी पड़ती है, भाव जगाना पड़ता है। वह सहज में नहीं होता। जब सहज प्रेम उत्पन्न हो जाता है तब भगवताकार वृत्ति सहज में सदा बनी रहती है। यही निजपद, आत्मपद में स्थिति है। भगवत्कृपा से ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव भी हो जाता है। इसी अवस्था के लिये मुनि भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं॥ १०६.४ ॥

106.4 What is the biggest gain and the greatest pleasure? According to Muni Bhardwaj there is no bigger gain or greater pleasure than to have a glimpse of the Lord which results in complete fulfilment of all desires. The aspirant then wants to have a natural love and affection for the lotus feet of the Lord. That is what Bhardwaj ji prays for. The love of God is there in every aspirant which has induced him to tread on the spiritual path. But spontaneous love without effort is bestowed by the grace of the Lord alone. The aspirant then thinks nothing else but God. He then realises the God within and the difference between the selfconsciousness and God disappears for ever.

भरद्वाज मुनि यहाँ परमार्थ के सर्वोत्तम मार्ग का निर्देश करने जा रहे हैं। कर्म वचन और मन से जब तक निश्छल होकर प्रभु की शरणापन्न जीव नहीं होता तब तक स्वप्न में भी वह सुखी नहीं हो सकता चाहे कितने ही अन्य साधन अपना लेवे। यह सिद्धान्त अकाट्य है। गीता में भी भगवान् "तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेण भारत" —हे भारत सर्वतोभावेन उसी के शरणापन्न हो जाओ। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" —सभी अवलम्बनों का परित्याग कर मुझ एक की शरण लो इत्यादि द्वारा उसी बात को कहते हैं। याद रहे यहाँ सच्चे सुख

****

की बात हो रही है क्षणिक विषय सुख की नहीं जो प्राणी मात्र को सुलभ है परन्तु जो परिणाम में दुःखरूप ही है।

मनुष्य की प्रवृत्ति के ये तीन ही उपकरण हैं– कर्म, वचन और मन। इन तीनों को सरल बनाना है अथवा एक करना है– 'कर्मण्येकं वचस्येकं मनस्येकं महात्मनः' कर्म, वाणी और मन की एकता वाला महात्मा होता है। 'मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई।।' इस में भी इसी बात को कविकुलचूड़ामणि कह रहे हैं। मन वाणीं और कर्म में छल क्या है? इसे भली प्रकार समझलेना चाहिये। रजोगुण और तमोगुण ही छलिया हैं। इन का प्रवेश मन वाणी और शारीरिक क्रियाओं में न हो यानी सात्त्विक कर्म, सात्त्विक वचन और सात्त्विक भाव ही मन में उदित हों इसी साधन का संकेत मुनिराज करते हैं। इस साधना में मुख्य आधार ईश्वर निर्भरता को अथवा उन के नाम को बनाना है। यह 'जब लगि जनु न तुम्हार' से संदेश है। यदि भगवत् परायणता नहीं होगी तो कभी भी सिद्धि की आशा नहीं की जा सकती। जब तक यह साधना अपनाई नहीं जायेगी तब तक वास्तविक सुख का लेश भी मिलने वाला नहीं। यज्ञ दान तप रूपी कर्म सात्त्विक कैसे होते हैं इस को गीता के १७वें और १८वें अध्याय में देखना चाहिये। शरीर वाणी और मन के तप का संपादन करने से इनमें आये हुए दोष का निवारण हो जाता है॥१०७॥

107. Bhardwaj Muni, through this verse is going to reveal the most important way of leading spiritual life where the aim is to get true happiness connected with realisation of all blissful God within. What the aspirant has to do is to stop cheating in action, speech and thought and surrender sincerely and completely to the

****

Lord. Without this the aspirant cannot even dream of true happiness. The so called worldly pleasures are available to everyone even to animals but this does not make one happy. On the other hand these lead to greater desires and tension accompanying them. The oneness of the mind, speech and action is one way to get rid of cheating or falsehood from life. The more rational way of course is what the Lord has told in Geeta. The Lord has spoken of the three gunas, their domain and the means to subdue the base ones in chapter 14. These gunas are Sattawik, Rajas and Tamas. Rajas and Tamas are full of faults and are responsible for introduction of falsehood and cheating in action speech and thoughts. The endeavour of the aspirant should be to replace the Rajas and Tamas with Sattawik. What are Rajas and Tamas actions, speech and thoughts are discussed in sufficient detail in Bhagwadgita chapter 17 & 18. The main support in this effort of refinement should be God, the indweller or his name. Complete self surrender to the lotus feet of the Lord and constant repetition of his sacred name go a long way in correcting the faults connected with mind, speech and actions and to achieve desired progress on spiritual path.

भगवान् श्री राम को सकुचाने वाले, भाव भक्ति जन्य आनन्द से सभी को तृप्त करने वाले मुनि भरद्वाज के वचन सबने (आदरपूर्वक) सुने। तब रघुनाथ जी ने वार्तालाप का क्रम जारी रखते हुए मुनि भरद्वाज जी के सुन्दर यश को अनेकों प्रकार से कह कर सब को सुनाया ॥ १०७.१ ॥

107.1 Everyone heard with respect Muni Bhardwaj's. words which might have been embarrassing for the Lord

****

Rama (as these contained praises of the Lord) yet these were fulfilling for everyone due to the joy created by their devotional touch . Then Shri Rama, the able descendent of king Raghu continuing the conversation told everybody in so many different ways the glory of the worthy achievements (in the spiritual field) of Muni Bhardwaj.

भगवान् ने कहा है मुनीश्वर! जिसे आप आदर दें वही बड़ा है उसी में सब गुण समूह निवास करते हैं। बड़ा कौन है? इसकी कसौटी उस का जन्म, पद, धन, जन, बल इत्यादि नहीं है बल्कि जिस को संत महापुरुष भी आदर देवें वही वास्तव में बड़ा है। स्वयं अपनी बड़ाई करना कोई बड़प्पन का चिन्ह नहीं बल्कि लघुता को सिद्ध करता है। मुनि भरद्वाज और प्रभु श्री राम परस्पर नमते हैं। वे एक दूसरे के गुणों को उजागर करते हैं। यही शाश्वत सुख का मर्म है। भगवान् और मुनि उसी, वाणी से न कह सकने वाले, सुख का अनुभव करते हैं ॥१०७.२॥

107.2 Lord Shri Rama said, " O greatest among munis ! That person alone is great whom you give regard. That person is the store house of goodness". A person is not great because of his high birth, his high position, his riches, his strength or his manpower but greatness comes when realised saints adopt him and care for him. Muni Bhardwaj and Lord Rama compete each other in modesty and experience joy beyond words. The secret of real joy is modesty and not self praise.

प्रयागराज के निवासी ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी उदासीन सिद्धों को जब यह समाचार मिला कि भगवान् श्री राम, सीता जी और लक्ष्मण भरद्वाज जी के आश्रम पर पधारे हुये हैं और वहां सुमधुर

****

सत्संग चल रहा है तो वे सब उन के आश्रम में आये ताकि महाराज दशरथ के सुन्दर सुपुत्रों के दर्शन कर लें, और भगवान् का वार्तालाप भी सुनलें। यहाँ 'देखन दसरथ सुअन सुहाए' से यह न समझें कि वे लोग सीता जी को भुला दिये बल्कि सीता जी के दर्शन वे मर्यादावश साक्षात् नहीं करते थे। सामने आने पर भी वे ऐसी देवियों के चरणों के ही दर्शन करते थे। जैसे लक्ष्मण जी सदा साथ रहते हुये भी सीता जी के मुख को कभी नहीं निहारते थे बल्कि उन के चरणों में दृष्टि जमाये रखते थे॥ १०७.३ ॥

107.3 When the residents of Prayag came to know that Lord Rama alongwith Shri Sita and Laxman had come to the Ashram of Muni Bhardwaj and a lively spiritual conversation was going on there, they, the Brahmcharis, Vanaprasthis, sanyasi and the unrevealed sidhas, all came to the Ashram to see the handsome sons of the king Dasratha. Here omission of Sita ji is deliberate. The above category of people never wished to see the beauty of Sita ji but they would rather like to see her feet only even if she were to come before their eyes. This was the respect that the ladies commanded. The same respect was shown by Laxman ji. He never looked at the face of Sita ji even when he was always near but preferred to look at her feet always. This was borne by his own admission when he was asked by Shri Rama to recognise the ornaments of Shri Sita presented by Sugreev, the king of monkeys.

विनम्र भगवान् राम ने अपनी महानता का परिचय देते हुये सब को प्रणाम किया। वे भगवान् का सदाचार देख कर आनन्दित हुये और दर्शन कर नेत्रों को लाभान्वित किया। भगवान् को आशीर्वाद देते हुये

****

सुख निधान प्रभु के सान्निध्य में उन को परम सुख का अनुभव हुआ और उनकी सुन्दरता की सराहना करते हुये वे लौट गये॥ १०७.४ ॥

107.4 The ever modest and great Lord paid obeisance to everyone. They were pleased to observe the sense of righteous conduct in Shri Rama and thought that they had greatly benefitted their eyes. They felt immense happiness and showered blessings. Praising their beauty (inward and outward), they returned.

श्री राम ने रात्रि विश्राम के अनन्तर प्रात:काल प्रयाग में स्नान किया और प्रसन्नता से मुनि भरद्वाज को सिर झुका कर प्रणाम कर सीता जी लक्ष्मण जी और जन निषाद राज के सहित वहाँ से चले।

प्रस्तुत प्रसंग अयोध्या काण्ड के दो० १०४ से प्रारम्भ हुआ था। उस में सखा, अनुज और सिय सहित प्रभु ने वन गमन किया था। इस प्रसंग की समाप्ति उपरोक्त दोहा १०८ से हो रही है जिसमें श्री राम, सिय लखन और जन के सहित प्रयागराज से वन की यात्रा पर आगे निकले। दोहा १०८ में पहली पंक्ति में ७ पद हैं और दूसरी में ९। संख्या १०८ की महत्ता शास्त्रों महापुरुषों ने कही है। अत: यह दोहा विशेष महत्त्व रखता है। १०८ संख्या का योग ९ बनता है। दोहे की पहली पंक्ति में भी यदि ९ पद होते तो दोहे की दोनों पंक्तियां ९-९ पद युक्त हो जातीं। किन्तु पहली पंक्ति में राम शब्द दो बार आया है। एक तो राम प्रारम्भ में ही है और दूसरा विश्राम के अन्तिम दो वर्णों में है। राम के प्रत्येक वर्ण को यदि स्वतन्त्र शब्द मान लिया जाये, जो उचित ही है, तो दोहे की पहली पंक्ति में भी ९ शब्द हो जाते हैं। यही संख्या विषयक विशेषता इस दोहे की जान पड़ती है॥ १०८ ॥

इति तृतीयस्थल: ॥ ३ ॥

****

108 Lord Rama rested for the night and in the early morning had a holy dip in Prayag. Then he alongwith Sita, Laxman and Guhu set out for the forest after delightfully bowing his head to Muni Bhardwaj.

This topic started with Doha 104 of the Ayodhya Kand when Lord Rama alongwith Guhu, Laxman and Sita set out for the forest for the first time. In the concluding Doha No. 108 above, again, Lord Rama alongwith Sita, Laxman and Guhu set out from Prayagaraj on further voyage to the forest. In the first line of the 108 Doha there are 7 words and in the second line there are 9 words. The figure 108 is quite important in spiritual field. Therefore Doha No. 108 should have some special significance. The total of figures in 108 is 9. Threfore it would have been appropriate if the first line of the above Doha had 9 words instead of 7. However in the first line word Rama has come twice. First in the beginning and second time in word Vishram. If the two letters of word Rama are taken as two words which is quite appropriate (being one of the most important names of the Lord) then the first line has also 9 words. This seems to be the speciality of this Doha as far as numbers are concered.

Thus ends Topic – 3



स्थल ४

अयोध्या काण्ड दो० २०३ से

दो० भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥ २०३ ॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें।
भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥ २०३.१ ॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए।
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने ॥ २०३.२ ॥
देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे।
सकल काम प्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥ २०३.३ ॥
मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।
अस जियँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी ॥ २०३.४ ॥

दो० अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ॥ २०४ ॥

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही।
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥२०४.१॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ।
चातकु रटनि घटे घटी जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई ॥२०४.२॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें।
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥२०४.३॥
तात भरत तुम्ह सब विधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू।
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं ॥२०४.४॥

दो० तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनी बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी।
कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सील सुचि साँचा ॥ २०५.१ ॥

****

सुनत राम गुनग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए।
दंड प्रणाम करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥ २०५.२ ॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे।
आसुन दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे ॥ २०५.३ ॥
मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई ॥ २०५.४ ॥
दो॰ तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥ २०६ ॥
यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध समंत दोऊ।
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई ॥ २०६.१ ॥
लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई।
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥ २०६.२ ॥
राम गवन बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला।
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी ॥ २०६.३ ॥
तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू।
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू ॥ २०६.४ ॥
दो॰ अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरण सनेहु ॥ २०७ ॥
सो तुम्हार धनु जीवन प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना।
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥ २०७.१ ॥
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं।
लखन राम सीतहि अति प्रीति। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥ २०७.२ ॥
जाना मरमु नहात प्रयाग। मगन होहिं तुम्हरें अनुराग।
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर के। सुख जीवन जग जस जड़ नर के ॥ २०७.३ ॥
यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई।
तम्ह तो भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू ॥ २०७.४ ॥

****

दो॰ तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ॥२०८॥
नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥२०८.१॥
कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही ।
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहु ॥२०८.२॥
पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहीं दूषा ।
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ ॥२०८.३॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी ।
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं ॥२०८.४॥
दो॰ जासू स्नेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ॥२०९॥
कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम पेम मृगरूपा ।
तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ॥२०९.१॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं ।
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा ॥२०९.२॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा ।
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ ॥२०९.३॥
सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरसे ।
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ॥२०९.४॥
दो॰ पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन ।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गद गद बैन ॥२१०॥
मुनि समाजु अरु तीरथराजू। साँचिहुँ सपथ अघाई अकाजू ।
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥२१०.१॥
तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ ।
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू ॥२१०.२॥

****

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू।
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥ २१०.३ ॥
राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू।
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥ २१०.४ ॥
दो० अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥ २११ ॥
एहि दुख दाँह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ॥ २११.१ ॥
मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥ २११.२ ॥
मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा।
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसइ अवध नहिं आन उपाएँ ॥ २११.३ ॥
भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई।
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी ॥ २११.४ ॥
दो० करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥ २१२ ॥
सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू।
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरि ॥ २१२.१ ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा।
भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए ॥ २१२.२ ॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निजि निज काज सिधाए ॥ २१२.३ ॥
मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता।
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥ २१२.४ ॥
दो० राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज ॥ २१३ ॥

****

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी।
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥२१३.१॥
मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू।
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥२१३.२॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे।
दासी दास साजू सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हें ॥२१३.३॥
सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं।
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुन्दर सुखद जथा रुचि जेही ॥२१३.४॥
दो० बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह ॥२१४॥
मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका।
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥२१४.१॥
आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना।
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध विधाना ॥२१४.२॥
असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से।
सुर सुरभी सुरतरु सबही के। लखि अभिलाषु सुरेस सची के ॥२१४.३॥
रितु बसन्त बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी।
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा ॥२१४.४॥
दो० संपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिजराँ राखे भा भिनुसार ॥२१५॥
कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा।
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥२१५.१॥
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें ॥२१५.२॥

भरज जी ने सृंगबेरपुर से पैदल चलते हुये प्रेम में उमँग उमँग कर राम सिय राम सिय कहते हुये तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश किया।

****

प्रयाग की सीमा क्या है? भरत जी ने किस स्थान पर उस सीमा में प्रवेश किया ये प्रश्न स्वाभाविक हैं। ऐसा अनुमान होता है कि जिस स्थान से गंगा जी और यमुना जी दोनों के दर्शन होने प्रारम्भ हो जायें वहीं से प्रयाग क्षेत्र का प्रारम्भ मानना चाहिये। प्रयाग में स्नान यमुना या गंगा के उस स्थान में स्नान माना जाता है जहाँ से संगम (त्रिवेणी) के दर्शन हों। खास त्रिवेणी में आकर स्नान करना तो सर्वोत्तम है। वही तो प्रयागराज का सिंहासन है॥ २०३॥

TOPIC – 4 AYODHYA KANDA DOHA 203

203 Bharata the younger brother of Rama could not bear the agony of Shri Ram's going to the forest alongwith Sita ji and Laxman. He decided to meet him in the forest and request him with all sincerity to return to Ayodhya. From Sringberpur he made his onward journery on foot as penance and entered Prayag in the afternoon. On way he was all the time chanting Sia Rama Sia Rama with overflowing love.

At what point did the border of Prayagraj begin and at what point is it termed a holy dip in Prayagraj ? These are questions which arise naturally in one's mind. Most probably the point from where one starts seeing both Ganga and Yamuna was the entrance to Prayag. Taking a dip in either Ganga or Yamuna at a point from where their union (Triveni) is visible constitute a holy dip in Prayag. The holiest dip is of course at Triveni where the two rivers meet and streams of two different shades are clearly visible. This is the throne of the king of holy places as has been described earlier.

****

भरत जी के कोमल चरणों पर पैदल चलने से छाले पड़ गये जो ऐसे चमकते दिखाई देते जैसे कमल की कली पर ओस की बूंदें चमकती हैं। कमल और ओस की उत्प्रेक्षा से गोस्वामी जी यह बतला रहे हैं कि भरत जी को उन छालों से तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ क्योंकि वे तो प्रेम निमग्न हो भगवन्नाम के उच्चारण में तल्लीन थे। हाँ दूसरों को उन छालों को देखकर अवश्य कष्ट होता था। जैसे कि अयोध्या से उनके साथ आये हुये समाज को हुआ। जब उन्होंने सुना कि आज भरत जी पैदल आये हैं तो इसी बात से सारा समाज दु:खी हुआ॥ २०३.१ ॥

203.1 The boils on Bharat's feet (due to journey on foot) shine like dew drops on the bud of lotus. The Saint poet's comparison of boils with dew drops indicate that Bharat did not experience any pain in feet because of the boils as he was so much absorbed in chanting the names of the Lord out of love that he was hardly conscious of the body. However, others who saw him, were definitely hurt like the people from Ayodhya. The very fact that Bharat had come on foot made them very sad.

भरत जी से पूर्व अयोध्यावासी प्रयाग पहुँच चुके थे। भरत जी ने पता कराया कि सब लोग स्नानादि कर चुके हैं, तो वे त्रिवेणी आए और सर्वप्रथम त्रिवेणी को प्रणाम किया। गंगा यमुना के श्वेत और श्याम जल में उन्होनें विधिपूर्वक स्नान किया। दानादि के द्वारा ब्राह्मणों का सत्कार किया। भगवान् राम के त्रिवेणी स्नान में गोस्वामी जी ने कहा था 'मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा'। भरत जी सर्वथा राम जी का अनुसरण करते हैं विशेष कर धर्माचरण में तो

****

भगवान् का अनुकरण करना तीनों भाईयों के लिए स्वाभाविक था। अतः तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी स्नान के समय जो सुकृत्य भगवान् श्री राम ने किये, वही भरत जी ने किये होंगे और वही गोस्वामी तुलसीदास जी ने महादेव की कृपा से लिखे होंगे। जहाँ भगवान् 'मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा' का कृत्य निभाते हैं वहीं भरतजी 'दिए दान महिसुर सनमानें' का कृत्य निभाते हैं। भरत जी भगवान् राम के वियोग से दुःखी हैं इसलिए उनके लिये 'मुदित' प्रयोग नहीं बनता। भरत जी ने 'सविधि' नहा कर भगवान् के 'पूजि जथा विधि तीरथ देवा' का अनुसरन किया और भगवान् की 'सिव सेवा' के समकक्ष 'दिए दान महिसुर सनमानें' का कृत सम्पन्न किया। हमने जो सिव सेवा का एक अर्थ ब्राह्माणादि को दान सम्मान देना भगवान् राम के त्रिवेणी स्नान के प्रसंग पर किया था वह भरत जी के स्नान प्रसंग में यथार्थरूप से घटता है। यहाँ यह भी सुनिश्चित कर सकते हैं कि 'सिब सेवा' का अर्थ ब्राह्मणों आदि को दान सम्मान देना भी समीचीन है॥ २०३.२॥

203.2 The people from Ayodhya had reached Prayag before Bharata because he started last and on foot. After Bharat got the news that everybody had taken bath and rested, he came to Triveni and offered salutations. He had a holy dip in the twin streams, one whitish (Ganga) and the other grey (Yamuna) observing sacred rules and rituals. It is quite natural to expect that Bharata and for that matter all the three brothers would follow the example of Shri Rama who is not only their eldest brother but also their ideal. Shri Rama after taking holy dip in Triveni had offered 'Shiva Seva' meaning the service to Lord Shiva. The meaning of service to Lord Shiva is amplified in what Bharata did when he had a

holy dip in Triveni. As stated above Bharata offered alms with respect to Brahmins. Therefore service to Lord Shiva means service of the Brahmins and other such categories of persons.

भरत जी ने त्रिवेणी में स्नान करते समय सितासित नीर का चिन्तन किया जिस का वर्णन गोस्वामी जी ने 'सविधि सितासित नीर नहाने' में किया और अब इस चौपाई में पुन: 'स्यामल धवल' हलोरों के दर्शन वे हाथ जोड़ करते हुए पुल्कायमान हो रहे हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि त्रिवेणी के सितासित अथवा स्यामल धवल बरण को देख कर उनको सीता राम जी के चरणकमलों का चिन्तन होने लगता है। वे पुल्कित शरीर हाथ जोड़े खड़े हैं। वे चाहते हैं कि सीता राम के चरणकमलों में उन का यह प्रेम उत्तरोत्तर बड़ता रहे। वे सोचते हैं कि उनकी यह इच्छा कौन पूरी करेगा। तभी तीर्थराज प्रयाग के प्रभाव का स्मरण कर वे कहते हैं हि प्रयागराज! आप सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले हो। आप का यह प्रभाव वेदों में वर्णित है और सारा जगत् इसे जानता है' ॥ २०३.३ ॥

203.3 Bharata while having a holy dip in Triveni took notice of the whitish and grey coloured water. After the bath he again observed the grey and whitish streams. His devotional nature could hardly miss the similarity between these two colours and the colour of the lotus feet of Shri Rama and Sita. With this thought his mind was completely overwhelmed with the love of Shri Rama and Sita. This caused thrill in his body and his hands got folded. He wished that his love of the lotus feet of Shri Sita Rama may ever increase. Would someone grant him this boon ?" Entertaining such thoughts he

recalled the great glory of Prayagraj and said, 'O Prayagraj ! You are capable of granting any wish. Your glory is sung by the vedas and known the world over.

भरत जी ने कहा कि 'मैं अपने क्षत्रियोचित याचना न करने के धर्म को छोड़ कर आप से भीख माँगता हूँ क्योंकि आर्त्त पुरुष क्या कुकर्म नहीं कर सकता। ऐसा हृदय में बिचार कर जगत् में (आप जैसे) सुजान उत्तम दानशील महानुभाव, याचक की वाणी को सफल करते हैं अर्थात् उन्हें याचित वर प्रदान करते हैं' ॥ २०३.४ ॥

203.4 Bharata said that "Contrary to my nature befitting a kshatrya of not accepting alms I beg (for a boon) from you as there is no misdeed a destitute would not resort to. Keeping this is mind the wise and great donors (like you) in this world do grant the wish of a beggar.

भरत जी ने कहा कि मुझे न तो अर्थ में रुचि है, न (भगवत्प्रेम को छोड़) किसी धर्म में आस्था है, न मुझे शरीर एवं इन्द्रियों से भोग भोगने की सामर्थ्य की आवश्यकता है, न ही मुझे निर्वाण पद (मोक्ष) की अपेक्षा है। मैं तो आप से यही वरदान चाहता हूँ दूसरा नहीं कि श्री राम के चरणों में मेरा प्रेम जन्म, जन्मान्तर तक भी बना रहे।

कई भक्त आश्चर्य करेंगे कि चारों पदार्थ विशेष कर मोक्ष को छोड़ कर भरत जी ने जन्म जन्म में श्री राम के चरणों में प्रेम के वरदान को ही क्यों मांगा। इस के कई कारणों का अनुमान होता है। प्रथम तो भरत जी निष्काम, निःस्पृह, निष्कपट, निष्ठावान् भक्त थे। उन्होनें भक्ति से कभी कोई सिद्धि की अपेक्षा नहीं की। जनक जी ने चित्रकूट में भरत जी के विषय में अपनी धर्मपत्नी को कहा था "साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।" भरत जी

****

के लिये राम प्रेम ही साधन था और यही सिद्धि भी थी। फिर जिसके पास पारस मणि हो वह अपने साथ सोने का भार क्यों ढोएगा? भक्तिरूपी पारस मणि में भी ऐसा ही घटता है। जहाँ परमात्मा की अनन्य भक्ति होती है, वहाँ सभी साधन एवं उनके फल अपने आप उपलब्ध हो जाते हैं। भक्ति का लक्षण ही कुछ ऐसा है उसमें दूसरी किसी वस्तु संकल्प आदि का स्थान ही नहीं रहता। 'प्रेम गली अति सांकड़ी ता में दो न समाए।' भक्ति का लक्षण करते हुये नारद जी ने कहा है 'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा (वह अन्तर्रात्मा में परम प्रेमरूपा है) अमृत स्वरूपा च (तथा अमृतस्वरूपा है)। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति (जिसे प्राप्त कर साधक सिद्ध हो जाता है अमर एवं तृप्त हो जाता है)। यं प्राप्य न किंचित् वाञ्छति, न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति (उसे प्राप्त कर कुछ भी इच्छा चिन्ता, द्वेष, नहीं करता; विषयों में रमण तथा उनके प्रति उत्साह नहीं करता)। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति' (जिसे जानकर मस्त, आश्चर्यचकित और आत्माराम हो जाता है)। इन लक्षणों से भक्ति ही अमृततत्त्व मोक्ष है तथा भक्ति और परमात्मज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है, यह ध्वनित होता है अर्थात् (सिद्ध) भक्ति और ज्ञान एक ही हैं। 'भक्तिहि ज्ञानहि नहीं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।'

साधन भक्ति भी 'फलरूपत्वात्' (फलरूप) होने से श्रेष्ठ मानी गई है। अतएव भरतजी जो परम विवेक विचार शील हैं उन्होनें परमेश्वर की भक्ति को अपने जीवन में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया।

एक और कारण है– भगवदिच्छा। भरत जी कोटि के महापुरुषों का अपना कुछ संकल्प नहीं होता, वे ईश्वर के हाथ की कठपुतली मात्र

****

होते हैं। जैसे परमात्मा उन से काम लेना चाहते हैं वैसे ही वे सोचते और आचरण करते हैं। इसी भगवदिच्छा के कारण अच्च्कोटि के महापुरुषों की मान्यताओं में कभी कभी विरोध भास्ता है। नारद मोह प्रसंग में भगवान् शंकर इस बात को स्पष्ट करते हैं

दो॰ बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ।।

वे महापुरुष भगवदिच्छा से ही कई नये मतों की स्थापना कर जाते हैं। 'आज्ञा भइ अकाल की तभी चलायो पंथ' सिख पंथ के प्रवर्तक गुरुगोविन्द सिंह जी का यह कथन इसी भगवदिव्छा की ओर संकेत करता है। भरत जी का अवतार भक्ति के नवीनतम मापदण्डों को स्थापित करने के लिए हुआ था। इस बात की पुष्टि स्वयं भरद्वाज मुनि इसी प्रयागराज प्रसंग में आगे निम्नांकित दोहे द्वारा करने वाले हैं।

दो॰ तुम्ह कहँ भरत क्लंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भक्ति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु।।

इस पहलू पर विस्तृत विचार हम आगे करेंगे ही.॥ २०४ ॥

204 Bharat said," I have no interest in wealth. I do not hanker after pious deeds (other than love of God). I have no use of strength in body and organs to enjoy wordly pleasures. I have also no expectations to achieve salvation. What I ask for is love of Shri Rama's feet now and in births to come. I do not want any boon other than this."

People may ask why Bharat ji leaving the four fold aspirations (Dharma, Artha, Kama and Moksha) requested only for the love of the Lord ? There could be many explanations.

Bharata was a selfless, guileless, faithful devotee free of wants. He never expected any returns for his devotional practices. King Janaka while in chitrakoot summed up Bharat's disposition,' 'For Bharata love of Shri Rama's feet is both effort and effect." Bharat's efforts were entirely directed towards cultivating love of Shri Rama and, in return, he only wanted increasing love for his Lord. The answer is very simple. 'Why one possessing Touch Stone should carry loads of gold with him' ? Where there is love of God, all other means and fruits follow automatically.

The path of devotion is very narrow in the sense that nothing else can accompany it in the passage. There is no room for any other thought or thing in its practice.

While defining 'Devotion' Sage Narada has said in his famous 'Bhakti Sutra'–Devotion is of the nature of supreme love in the Divine Self and it is the embodiment of Nectar. Through Bhakti one becomes perfect, immortal and contented etc. It is evident from these definitions that Bhakti in its supreme stage bestows the state of immortality and bliss which is what Moksha means. Saint Tulasi Das has also said, 'There is no difference in supreme Bhakti and Knowledge, the bestower of Moksha'. Even in the case of lower stages of Bhakti one begins to enjoy the taste of its fruit. Therefore Bhakti excels as a means also as compared to other spiritual practices. Bharat being extremely wise and thoughtful, therefore chose love of God both as a means and as the goal.

There is one more reason– the Will of God. For special category of people like Bharata who are sent by God for a specific purpose in the world, their life and thoughts are guided by God. They have nothing of their own and do what the God wants them to do. That may be the reason why different realised souls semetimes expound different philosophies. These great souls only fulfil the will of God even when they create a new cult. The last of the Sikh Guru's declaration that "It is order of the Lord that sikhism is created" proves the above contention. In Ramcharitmanas Lord Shiva with reference to the delusion of Rishi Narada says to Parvati. "There is none who is wise or foolish by himself but it is only through God's will that a person (like Rishi Narada) becomes so." Bharat ji was sent to this world to establish path of God's devotion of the highest order. He was therefore doing what he was commissioned to do by the Lord. Muni Bhardwaj said to Bharata, 'You may think that your activities have smeared your character but we take it that an auspicious era has begun where by following your example the devotees may drink the nectar of devotion to the Lord'. What transpired between Muni Bhardwaj and Bharata on this topic, we are going to discuss as we proceed further.

भरत जी तीर्थराज प्रयाग से याचना करते हुये कहते हैं कि, "मैं राम जी को तो जानता हूँ (वे मेरे बारे में कभी बुरा नहीं सोचेंगे) मगर लोग चाहे मुझ कुटिलकर्ता को कहें कि यह गुरु और स्वामी से द्रोह करने वाला व्यक्ति है फिर भी मेरा सीता राम जी के चरणों में प्रेम आपके अनुग्रह से दिन प्रतिदिन बढ़ता रहे''।

****

भरत जी राम जी के विषय में कभी यह नहीं सोच सकते कि वे किसी को कुटिल समझेंगे विशेषकर अपने प्राण-प्रिय छोटे भाई को। सन्त कवि तुलसी दासजी भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के लिये कभी यह नहीं लिख सकते कि वे भरत जी को कुटिल करके जानेंगे। ऐसा समझना श्री राम के साथ सरासर अन्याय होगा क्योंकि वे तो कभी शत्रु के प्रति भी ऐसी भावना नहीं रखते। अतएव उपर्युक्त चौपाई का जो आपाततः अर्थ प्रतीत होता है कि भरत जी ने यह कहा कि चाहे राम जी मुझे कुटिल करके जानें मैं उनके चरणों का प्रेम ही चाहता हूँ, ऐसा नहीं कर सकते। अतः पूर्व में दिया हुआ अर्थ ही ठीक है क्योंकि वह भगवान् राम की उदारता एवं भरत जी की महत्ता को किसी अंश में ठेस नहीं पहुँचाता॥ २०४.१॥

204.1 Continuing his prayer to Prayagraj, Bharata said, "I know Shri Rama (he will never think ill about me) but the people would pass the remarks about me, the evil-doer, that this fellow is antiguru and anti master. Even so I wish that by your grace my love for the holy feet of Shri Rama may increase day by day."

Shri Rama would never think that Bharata, his devoted younger brother, or for that matter, any human being is an evil doer. In the same way, Bharat the embodiment of wisdom and devotion and Saint Poet Tulsidas would never have said that Rama would know Bharata to be an evil person. Therefore the apparant meaning of the verse does not fit here properly. So the meaning given above seems to be appropriate.

बादल जन्म भर उस ओर ध्यान न दे और जल के स्थान पर बिजली और ओले बरसाए, पर चातक की रटन घटती नहीं। उस का प्रेम तो बढ़ता ही जाता है।

****

भरत जी परमार्थ साधना के एक मौलिक सिद्धान्त का यहाँ चातक के दृष्टान्त द्वारा खुलासा करते हैं। साधना निर्पेक्ष और निरन्तर चलनी चाहिए। कई साधक थोड़ा सा भजन साधन करने के पश्चात् फल के न मिलने पर निराश हो जाते हैं और साधना से विमुख हो जाते हैं। भरतजी कहते हैं चातक पक्षी की तरह हमारा प्रभु चरणों में प्रेम हो। चातक बादल से प्रेम करता है। उसकी प्रार्थना कब स्वीकार होगी यह वह नहीं सोचता और अपनी रटन जारी रखता है। बादल चाहे बूँद के स्थान पर बिजली अथवा ओले गिराए परन्तु चातक की रटनि में कभी कमी नहीं आती। उसका उत्साह बढ़ता रहता है। यही उसकी आन है। यदि इसमें कमी आ जाये तो चातक की प्रतिष्ठा ही समाप्त हो जायेगी। तभी प्रेम में चातक का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। परमार्थ साधना में इस प्रकार का उत्साह परमावश्यक है॥ २०४.२॥

204.2 Bharata explains one of the basic principles of spiritual practices by giving the example of 'Chatak' bird. Spiritual pursuit should proceed uninterrupted without any expectation. Some aspirants do a little practice and expect immediate results from that. But Bharat ji prays that his love for Shri Rama be like the 'Chataka' bird's love for clouds. The bird desires to quench its thirst only by the down pour from the cloud. He goes on chirping loudly without caring when a cloud would appear and when the rain would pour. Sometimes instead of rain the cloud throws hails and lightning but the bird does not care and keeps up its loud chirp setting an example of extreme love. An aspirant ought to have zeal and adherence like the Chataka bird.

'जैसे सोने को तपाने से उसमें चमक आ जाती है ऐसे ही प्रियतम के निमित्त नियम निभाने से उपासक तेजस्वी होता जाता है'। भरत जी की तीर्थराज से प्रार्थना क्या थी प्रेम तत्त्व के ऊपर सधा हुआ व्याख्यान था जिसे सुन कर तीर्थराज अत्यन्त प्रसन्न हुये और बीच त्रिवेणी में सुमंगलकारी मधुर वाणी में उन्होंने भरत जी को संबोधित किया ॥ २०४.३ ॥

204.3 Like gold gets brighter when heated, in the same way, an aspirant shines as he follows discipline for the deity of his choice. Bharata's prayer to Prayagraj is nothing but a fine exposition on the principles of devotion. Hearing these worthy words the king of holy places was greatly pleased and from the midst of 'Triveni' he spoke in a sweet and highly beneficial voice.

तीर्थराज ने कहा, 'प्रिय भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। श्री राम के चरणों में तुम्हारा अगाध प्रेम है। तुम अपने मन में प्रभु प्रेम की कमी समझते हुये बेकार ग्लानि मान रहे हो, परन्तु वास्तविकता यह है कि श्री राम को तुम्हारे समान कोई दूसरा प्रिय नहीं है।'

आश्चर्य है! भरत जी ने तो तीर्थराज से राम प्रेम का वरदान मांगा, वह भी इतनी आतुरता पूर्वक कि उन्होंने इस वर की भिक्षा अपने क्षात्र धर्म को तिलाञ्जलि दे कर मांगी। पर तीर्थराज ने उनको वरदान न देकर उनकी प्रशंसा करके उनको टाल दिया। वास्तव में भरत जी के मुखारबिन्द से भक्ति की अद्भुत व्याख्या श्रवण करके तीर्थराज को यह अनुभव हुआ कि भरत जी से बड़ा श्री राम प्रेम का पात्र उस समय जगत् में कोई दूसरा नहीं है। उनको वरदान देकर इस बात को सिद्ध करने की धृष्टता करना कि मैं उन्हें कुछ ऐसी वस्तु दे रहा हूँ जिस की उनके पास

****

कमी है बड़ा ही अनुचित होगा। अतएव तीर्थराज ने केवल उनको वस्तुस्थिति का स्मरण कराया कि जिस वस्तु कि 'आप याचना कर रहे हो वह आप से बढ़ कर और किसी के पास है ही नहीं, मेरे पास भी नहीं है।' भरत जी यह जानते थे कि तीर्थराज की बात सर्वथा सत्य होती है क्योंकि उन का सत्य ही सचिव है- 'सत्य सचिव श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीत हितकारी'। भरत जी को उनके इन वचनों से परम संतोष हुआ जिसे आगे के दोहे में कविराज वर्णन करते हैं॥ २०४.४ ॥

204.4 Prayagraj said, "Beloved Bharat! you are a thorough gentleman. Your love for Shri Rama's feet is boundless. Underestimating the intensity of your devotion, you are unnecessarily feeling soar in your heart. In fact, Shri Rama considers no one as dear to him as you."

Is it not strange that Bharata had asked Prayagraj to grant boon of love of Shri Rama, that too, with the humility befitting a beggar only but what Prayagraj gave him were only some words of praise and nothing else. This is what could possibly have happened. Prayagraj after hearing the superb eloquence of Shri Bharata on the principles of devotion realised that there was none who could surpass the devotion of Shri Bharata. Giving him a boon of devotion would amount to admitting that Bharata had not sufficient devotion already. That would make him (Prayagraj) a laughing stock of the wise and would also not be fair to Bharat. Therefore Prayagraj made Bharata realise that what he was praying for, he already had in abundance, more than anybody else including him. Bharata knew that 'Tirtharaj' would never utter a word which would be untrue as truth was his

greatest asset. So Bharat felt greatly relieved as per the description coming in the following verse.

त्रिवेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरत जी का शरीर रोमाञ्चित हुआ और हृदय में हर्ष का संचार हुआ। आकाश में देवता भरत को धन्य धन्य कहते हुये खुशी से फूलों की वर्षा करने लगे।

त्रिवेणी के वे कौन से अनुकूल वचन थे जिन्हें सुन कर भरत जी तथा देवगण हर्षित हुये। 'भरत जी आप सब प्रकार से साधु हैं'— इस बात को सुनकर वे कभी हर्षित नहीं हो सकते क्योंकि जो महापुरुष पूर्णरूपेण साधु है वह अपनी प्रशंसा सुन कर कभी प्रसन्न नहीं होता। 'राम चरण अनुराग अगाधू' यद्यपि ये वचन भरत जी को अनुकूल लग सकते हैं परन्तु भरत जी ये कभी नहीं मानते थे कि प्रभु चरणों में उनका अनुराग परम सीमा तक पहुँच चुका है। अतः इस वचन से भी वे पुल्कायमान नहीं हो सकते। बस फिर तो एक ही वचन बचा है 'तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं' यानि राम प्रेम में आपके नम्बर सबसे अधिक हैं। भरत जी को यह सुनकर प्रभु के कोमल स्वभाव का चिन्तन हुआ कि वे कितने कृपालु और जन परिपालक हैं। इन्हीं भावों के कारण उनको रोमांच एवं हर्ष हुआ।

फिर देवता क्यों हर्षित हुये? इसके दो कारण हो सकते हैं। धरती पर जब कोई भक्ति, ज्ञान, दान, बलिदान, वीरता एवं धर्म परायणता की विशिष्ट घटना घटती है तो देवगण हर्ष से उसका स्वागत एवं अनुमोदन करते हुये पुष्पवर्षा करते हैं। दूसरे भरत जी जब से अयोध्या से चले थे, देवता लोग इस बात से चिंतित हो रहे थे कि कहीं दृढ़ भ्रातृप्रेम के कारण वे प्रभु श्री राम को वन से लौटाने में सफल न हो जायें। परन्तु जब देवताओं ने भरत जी का तीर्थराज के प्रति वक्तव्य और उसकी प्रतिक्रिया

****

के रूप में तीर्थराज जी के सत्य वचन सुने तो उन्हें ढारस बन्धी कि भरत जी सब प्रकार से साधु हैं, और राम जी के न केवल प्रिय भाई हैं अपितु सर्वोत्कृष्ट भक्त भी हैं। तब देवताओं को हर्ष हुआ कि प्रभुभक्त श्री भरत जी भगवान् श्रीराम जी को लौटाने का हठ नहीं करेंगे बल्कि प्रभु के समझाने पर उनकी आज्ञानुसार ही चलेंगे ॥ २०५ ॥

205 Hearing the favourable words of 'Triveni' Bharata's hair stood on ends and his heart was filled with joy. In the sky the gods were also pleased and greeted Bharata by showering flowers and saying 'Blessed one, blessed one!'.

What were the favourable words which made Bharata happy? Firstly the king of holy places complimented Bharat by saying that he was a saint through and through. However, a saint will never feel elated by listening to his own praises. Therefore Bharata would not have been pleased when he was termed a thorough saint. Secondly, he was told that he had immense love for the feet of Shri Rama. These words would no doubt be encouraging for Bharata but he would never think that he had reached the sumit of Shri Rama's love. Rather he always yearned to have rising love curve in his life. This, therefore, could not be the reason for Bharata's thrilling happiness. The third and the last words from Triveni were 'None was so dear to Shri Rama as you'. In other words Bharat stood-first among the devotees of the Lord. This truthful expression from Triveni generated a feeling in Bharata, "How kind is my Lord and how caring is the Lord for his devotees!" Recounting the loving nature of Shri Rama, Bharata's hair stood on ends and his heart was filled with joy.

****

Then why did the gods felt happy? There could be two reasons for that. Firstly, whenever an act of supreme devotion, wisdom, gifting, sacrifice, valour and righteousness is performed on the Earth, gods feel happy and greet the hero by showering flowers on him. So when Bharata was declared first in the class of devotees, gods greeted him accordingly. Secondly as Bharata started from Ayodhya to meet Shri Rama, the gods were worried that Lord Rama might return to Ayodhya because of the intense love he had for his younger brothers especially Bharata. However, when the gods heard his views on devotion as expressed in his prayer to Triveni and then heard the truthfull comments of Triveni there on, the gods were reassured that Bharata being a thoroughly saintly person and not only the younger brother of the Lord but a top most devotee, he would not force Shri Rama to return against his wish.Therefore the gods were very happy at these prospects.

तीरथराज प्रयाग में निवास करने वाले वानप्रस्थी ब्रह्मचारी गृहस्थी और संन्यासी बड़े आनन्दपूर्वक दस पाँच मिल कर परस्पर कहते हैं कि भरत जी का प्रेम और स्वभाव पवित्र और सच्चा है। इसके साथ ही वे परस्पर श्री राम के गुणों का भी वर्णन करते रहे जो आगामी चौपाई से स्पष्ट होता है। जब भगवान् राम तीर्थराज में भरद्वाज जी के आश्रम में पधारे थे, तब की समकक्ष चौपाई इस प्रकार थी–

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी।
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए।।

प्रयाग निवासियों को उस समय तो समाचार मिला और तब वे भगवान् के दर्शन करने भरद्वाज आश्रम गये। पर यहाँ तो उन्हें भरत जी को देखने का सौभाग्य उनके त्रिवेणी स्नान के समय ही मिल गया। इतना ही नहीं उन्होंने भरत-तीर्थराज वार्तालाप भी श्रवण किया और देवताओं की पुष्पवर्षा के दर्शन किए और धन्य धन्य का उद्घोष भी सुना। उधर जबकि भगवान् राम के दर्शनों को बटु, तापस, मुनि, सिद्ध और उदासी गये यानी गृहस्थियों को भगवान् के दर्शन नहीं हुए, यहाँ भरत जी के दर्शन चारों आश्रमियों को हुए। भरत जी की इस वन यात्रा में भगवान् राम की वन यात्रा से कुछ वैशिष्ट्य सिद्ध होता है जो केवल त्रिवेणी स्नान अथवा भरद्वाज आश्रम में ही नहीं कई अन्य स्थलों में भी कविराज तुलसीदास जी ने दर्शाया है॥ २०५.१ ॥

205.1 The residents of Prayagraj included all types of aspirants and devotees. They were very happy to have been able to listen to the divine conversation between Bharata and Prayagraj as also the words of gods while they were showering flowers on Bharata. They discussed the whole episode in groups of five to ten persons each and concluded that the devotion of Bharata for Lord Rama was pure and true. His nature also was truthful and pure. They also sang the glories of Lord Rama as would be evident in the next verse

In a parallel verse occurring in this very chapter when Lord Rama was in Muni Bhardwaj's Ashram the residents of Prayagraj got the news about Shri Rama and all came to have a glimpse of the handsome pair of king Dasratha's sons. In that verse the householders were excluded which means they were not fortunate enough to see the Lord. But in the case of Bharat all

the four Ashramites (Brahmchari, Householder, Vanaprasthi and Sanyasi) not only watched Bharata taking a holy dip but also listened to the divine voices of Triveni and the gods.

As we shall see further also Bharata's journey to meet Lord Rama at chitrakoot is full of incidents where Bharata's glory excels as compared to Lord's own. This is because of Lord's grace on his devotees.

प्रयागराज निवासियों द्वारा प्रस्पर राम जी के सुन्दर गुण समूहों का व्याख्यान सुनते हुये भरत जी भरद्वाज मुनि के पास आये। उन्होंने मुनि भरद्वाज जी के दर्शन होते ही उन्हें दण्ड प्रणाम किया। मुनि भरद्वाज जी को ऐसा लगा कि भरत जी के रूप में उनके भाग्य ही मूर्तिमान होकर दिखाई दे रहे हैं। श्री राम के दण्डवत प्रणाम करते समय मुनि भरद्वाज जी के मन में तुरत कोई ऐसा भाव नहीं आया जैसा कि भरत जी के दण्डवत करते समय आया। यह भी भरत जी के वैशिष्ट्य का द्योतक है॥ २०५.२ ॥

205.2 Bharata, listening with interest the conversation of the people where the topic was Lord Rama's fine characteristics, came to Muni Bhardwaj. He prostrated by lying down like a stick before the Muni who felt as if his good luck had come there in the form of Bharata. This spontaneous feeling of Bhardwaj Muni for Bharat was not exhibited when Lord Rama visited the Muni and did a similar act of prostration. This again points to the excellence of Bharata.

मुनि भरद्वाज जी ने दौड़ कर भरत जी को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर उन्हें कृतार्थ किया। मुनि भरद्वाज जी का भरत जी

****

को दौड़ कर उठाना और हृदय से लगाना भी भरत जी का वैशिष्ट्य प्रकट करता है। श्री राम से मिलते समय मुनि के मन में इतनी आतुरता नहीं थी जैसी भरत जी को मिलते समय है।

मुनि जी ने भरत जी को बैठने के लिये आसन दिया। भरत जी ऐसे सिर झुका कर बैठ गये मानो संकोच के घर में भाग कर प्रवेश करना चाहते हों। यह उन की विनम्रता और गुरुजनों के प्रति अत्यन्त आदर भाव को सूचित करता है॥ २०५.३॥

205.3 Bhardwaj Muni ran towards Bharata, picked him up and embraced him. The Muni blessed Bharata which generated a feeling of complete fulfillment in him. On being offered a seat, he sat with head downwards as if he would run away and enter the abode of embarrassment. This shows how much humble Bharata was and how much respect he had for Gurus. Muni Bhardwaj's action to run and embrace Bharata was absent when Rama prostrated before Muni earlier. This again is a feather in Bharata's cap.

भरत जी के मन में यह बड़ी चिन्ता है कि मुनि कुछ पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूँगा। मुनि भरद्वाज ने भरत जी के स्वभाव और संकोच को देखते हुये स्वयं ही वार्तालाप प्रारम्भ करते हुये कहा, हि भरत सुनो हमें जो भी घटना आपके घर में घटी है उसका समाचार मिल चुका है पर विधाता की करनी के सामने कुछ पेश नहीं चलती।'

205.4 Bharata is actually much worried that if Muni Bhardwaj asked him anything about what had happened in their family it would be quite embarrassing for him to reply. Rishi Bhardwaja realising the awkwardness

Bharata was feeling due to his gentle nature, himself started the conversation– "Listen Bharata! I have already come to know everything that had taken place but I believe one cannot prevent what is destined to happen."

भरद्वाज जी ने कहा, 'हे भरत! माँ की करतूत समझ कर तुम हृदय में दुःख मत करो। वास्तव में कैकई का इसमें दोष नहीं। उसकी बुद्धि में तो सरस्वती ने धूर्तता भर दी थी॥ २०६ ॥

206 Muni Bhardwaj said, " O, Bharata, Do not feel soar in your heart due to the actions of your mother. Actually she is not to be blamed either as the goddess Saraswati had polluted her mind using her divine powers."

'कैकई को हमारी इस बात को कहने पर भी कोई भला नहीं कहेगा। सरस्वती जी ने कैकई की बुद्धि बिगाड़ दी इस रहस्य को लोक नहीं जानता। अतएव लोक तो कैकई को भला नहीं कहेंगे और विद्वानों को भी लोक और शास्त्र दोनों मान्य होते हैं। इसलिये कैकई लोकापवाद से नहीं बच सकेगी। पर भरत, तुम्हारी बात कुछ और ही है। तुम्हारी पवित्र कीर्ति का गान कर लोक और शास्त्र दोनों बड़ाई पावेंगे'। यह मंगलमयी भविष्यवाणी भरद्वाज मुनि ने भरत जी के लिये की॥ २०६.१ ॥

206.1 "Even so, people will not speak good of Kaikayee and the learned ones form their opinion according to the dictates of both people and scriptures". Kaikayee's mind was tutored by Saraswati was known only to those who had a high sense of the scriptures. People at large were not aware of the secret. "Therefore Kaikayee will not be spared of blame by the people. But Bharata in your case it is quite different. Both the scriptures and the people

****

would be honoured by singing your blemishless glory", Bharata was thus blesed by Muni Bhardwaja.

भरत जी का वह कौन सा यश है जिसे लोक और शास्त्र गाकर अपने आपको धन्य मानेंगे, उसका वर्णन अब मुनि संक्षेप में करने जा रहे हैं– 'लोक एवं वेद की इस मान्यता को सब लोग कहते हैं कि पिता जिस पुत्र को अपने राज्य का हकदार बनाये वही राज्य पाता है। सत्यव्रती महाराज दसरथ तुमको बुला कर राज्य देते तो सुख, धर्म और बड़ाई के भागी बनते' ॥ २०६.२ ॥

206.2 What were the glorious deeds of Bharat by singing which both the scriptures and the people could have felt great. This is described briefly by Muni Bhardwaja in the lines that follow– 'Everyone says that as per the dictates of the scriptures and the voice of the people it is the right of the father to choose his successor to the throne from among his sons. So if the truthful king Dasratha had called you and given the responsibilities of the throne, it would have generated in him a feeling of happiness, righteousness and greatness'.

'अनर्थ की जड़ तो श्री राम का वनगमन है जिसे सुन कर सारे संसार को पीड़ा हुई। बेसमझ रानी कैकई ने भावी वश होकर जो बुरी चाल चली उससे उसे स्वयं अन्त में पछतावा हुआ'।

मुनि भरद्वाज जी ने कैकई को प्रथम तो यह कहकर दोषमुक्त करना चाहा कि उनकी बुद्धि सरस्वती जी ने फेर दी थी, परन्तु लोकमत में यह बात स्थिर नहीं हो सकती थी, अतः वह लोकापवाद से मुक्त न हो सकी। अब रानी द्वारा पश्चाताप का जिकर करके मुनि

****

उसके कलंक को धोना चाहते हैं। सत्य है साधु सभी का कल्याण ही सोचते हैं और फिर कैकई को भरत जैसे धर्मात्मा भक्त पुत्र को जनने का गौरव प्राप्त था। भगवान् राम भी कैकई को माँ कौशल्या से भी बढ़ कर सम्मान देते थे। भगवान् राम ने कहा भी 'दोषु देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन गुर साधु सभा नहिं सेई'' ॥ २०६.३ ॥

206.3 'The root cause of the trouble is the going of Shri Rama to the forest. The unwise queen playing into the hands of destiny acted foul then, but later on she was repentant.'

The saint Bhardwaj firstly tried to absolve Kaikayee of the blame by saying that goddess Saraswati had soiled her mind. This however did not hold good as the general public did not know these secrets. Again the Muni is trying to restrict the damage by putting the blame on destiny and disclosing that the queen was repenting later. The defence of Kaikayee by the Muni is justified firstly because a saint would always help a person in distress. Secondly Kaikayee had the distinction of being the mother of one of the most illustrious sons in Bharata. Thirdly even Shri Rama respected Kaikayee more than his mother Kaushalya. The Lord told Bharata that only those persons would blame mother Kaikayee who had not been attending assembly of gurus and saints.

'उसमें भी तुम्हारा कोई थोड़ा सा भी अपराध कहे तो वह नीच, बेसमझ और असाधु ही होगा। भरत ! तुम यदि राज्य भी करते तो भी तुम्हें कोई दोष नहीं लगता, बल्कि श्री राम को यह सुन कर संतोष ही होता' ॥ २०६.४ ॥

206.4" Even then, if anybody tries to put even the slightest blame on you he will be branded as mean, fool and a rouge. You would not have been faulted even if you had accepted the throne. Infact Lord Rama would have got satisfaction on hearing this."

'भरत ! अब तो तुमने अत्यन्त अच्छा निश्चय किया जो तुम्हारे योग्य ही है क्योंकि रघुनाथ जी के चरणों में स्नेह जगत् में अति कल्याण का मूल है' ॥ २०७ ॥

207 'Bharata! Now what you have decided is extremely fine and is befitting you as the love of Shri Rama's feet is at the root of all superior favours in this world.'

'श्री राम के चरणों का प्रेम तो तुम्हारे जीवन की सम्पत्ति है और प्राणों का आधार है। तुम जैसा भाग्यशाली और कौन हो सकता है ? हे तात ! यह तुम्हारे लिये कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि तुम दसरथ के पुत्र और श्रीराम के प्रिय भ्राता हो' ॥ २०७.१ ॥

207.1 'The love of Shri Rama's feet is your wealth and the vital airs to sustain you. None is so fortunate as you are. O dear ! you being the son of Dasrath and the loving brother of Shri Rama, it is, of course, not a strange thing for you.'

'भरत सुनो ! रघुबीर जी के मन में तुम्हारे समान कोई प्रेमपात्र नहीं है। जब भगवान् ने इस आश्रम में रात्रि बिताई थी तो सारी रात वे, सीता और लक्ष्मण तुम्हारी सराहना अत्यन्त प्रेमपूर्वक करते रहे'। इस अयोध्या काण्ड के दोहा १०८ में आया भी है 'राम कीन्ह बिश्राम निसि' यानी भगवान् ने रात्रि में विश्राम मात्र किया, वे सोये नहीं।

तीर्थराज प्रयाग ने भी भरत जी को ऐसा ही कहा था कि 'तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं'

यही भरत जी का बिमल यश है जो लोक में फैलता जा रहा है और जिस के विषय में भरद्वाज मुनि कह आये हैं कि "तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई" ॥ २०७.२ ॥

207.2 Bhardwaj Muni is all praise for Bharata and adds an extremely important statement to his glory. He said, "Listen Bharata, Lord Rama considers none so worthy of his love as you are. That whole night, when the Lord was here, was spent in exchanging words of your praises with extreme love with Sita and Laxman".

In verse (Doha) no. 108 in this Ayodhya kand it was rightly mentioned that the Lord rested at night. The word 'Lord slept' were avoided there by the realised saint poet who knew that the Lord was whole night admiring Bharata.

Prayagraj had told in a similar language about Rama's great love for Bharata. The glory of Bharata thus started spreading and as predicted by Muni Bhardwaj both the scriptures and people would consider themselves great to sing Bharata's glories.

'भगवान् राम का तुम्हारे ऊपर अति स्नेह का मर्म तब खुला जब भगवान् त्रिवेणी में स्नान कर रहे थे। वहाँ वे तुम्हारे अनुराग में मगन हो जाते थे। श्री राम का तुम पर ऐसा प्रेम है जैसा किसी जड़ विषयासक्त पुरुष का जगत् में सुखी जीवन पर होता है।'

सुना है जब राम जी स्नान के लिये संकल्प करते तो संकल्प में जब 'भरत खण्डे' शब्द आता तो भरत प्रेम में मगन भगवान् संकल्प

****

वाक्य को पूरा न कर पाते। वे पुन: आरम्भ करते और 'भरत खण्डे' बोलते ही प्रेम निमग्न हो जाते। ऐसा पता नहीं कितनी बार हुआ। विषयों के लिए जो संसार में रात दिन मनुष्य भाग रहा है वह उनमें सुख पाने की अभिलाषा से ही है। अत: संसारी मनुष्य जैसे निरन्तर विषय सुख में आसक्त है ऐसे श्री राम भरत स्नेह में अनुरक्त हैं। भगवान् का ऐसा होना उनकी प्रतिज्ञा 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'' के अनुरूप ही है। जैसा भरत जी का राम जी के प्रति अतीव प्रेम है वैसा ही भगवन् का भरत जी के प्रति है॥ २०७.३ ॥

207.3 Lord Rama's intense love for Bharata was revealed when Shri Rama was taking a holy dip in Triveni. As per the ritual one has to resolve doing a particular religious act. In that resolution the mention of place, time, action and the purpose has to he made. While uttering the resolution of holy bath Lord spoke "Bharat Khande" (in Bharata–India) and as soon as the name of Bharata came Lord was overwhelmed with love and could not proceed further to enunciate the resolution. Starting afresh he was again stuck at 'Bharata Khande' and again filled with love for Bharata. How many times did it happen is not known. Rama's love for Bharata is compared to the love of mortals for uninterrupted pleasure in enjoying the sense objects throughout his life. Driven by this delusion a man runs from morning till night and even during night. Lord Rama's love for Bharata is in the same proportion though somewhat finer than Bharta's love for Shri Rama. This is as per the vow of the Lord "Howsoevere men approach me, even so do I seek them". (Gita 4.11)

'भगवान् श्री राम का भरत पर इतना स्नहे रखना उनके लिये कोई अधिक बड़ाई की बात नहीं है क्योंकि भरत ही क्या कोई भी जब उनके अनन्य शरणापन्न होता है तो वे केवल उस भक्त की ही नहीं अपितु उसके समस्त कुटुम्ब की पालना करने के स्वभाव वाले हैं। हे भरत ! मेरे मत में तुम श्री राम स्नेह की साक्षात् मूर्ति हो यानी श्री राम 'स्नेहावतार' तुम हो' ॥ २०७.४ ॥

207.4 'Exhibition of extreme love for Bharata by Lord Rama is not a very big thing for the Lord as it is His very nature that He would sustain the whole family of a devotee who has completely surrendered himself to the Lord. O Bharat ! you in my opinion are the embodiment of love of the Lord'.

हे भरत ! जिस घटना को तुम अपने लिए कलंक मान रहे हो उस से हमें सबको तो उपदेश प्राप्त हो रहा है। परमात्मा की भक्ति में जो रस है उसकी सिद्धि के लिये यह समय श्री गणेश (उपयुक्त एवं शुभ) हुआ है'।

ईश्वर भक्ति सदा सरस ही होती है। जो भक्ति मार्ग को अपनाता है उसे प्रथम दिन से ही रस (आनन्द) की अनुभूति होने लगती है क्योंकि भक्ति फलरूप है। परन्तु जीव विषय सुख से इतना लिपटा हुआ है कि भक्ति मार्ग अपनाने के बाद भी विषय रस को नहीं छोड़ पाता। विषय तो कदाचित् छूट भी सकते हैं परन्तु उनकी आसक्ति (रस) नहीं छूटता "रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते" (गी० २.५९) विषय रस में मिलने से भक्ति रस फीका पड़ जाता है। इस प्रकार वास्तविक रस (आनन्द) की सिद्धि नहीं हो पाती। भरत जी ने जो मार्ग भक्ति का अपनाया उसमें कामना का सर्वथा अभाव, यहाँ तक कि मुक्ति

****

की इच्छा भी नहीं है। प्रियतम प्रभु कब दर्शन देंगे, कौन सी परीक्षा लेंगे उस परीक्षा में हमें कष्ट तो नहीं होगा, इन सब बातों की भी कोई चिन्ता नहीं। चातक का उदाहरण सामने रख कर भरत जी ने भक्ति को सर्वथा निर्दोष बना दिया है। भक्ति से उन्हें और अधिक भक्ति की ही सिद्धि लेनी है। "कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निभाए" ॥ अतएव भक्ति रस की सिद्धि का मार्ग भरत जी ने प्रशस्त कर दिया।

भरत जी का अवतार इसी मार्ग को बताने के लिये ही हुआ था। तभी मुनि कह उठे, "धरें देह जनु राम सनेहू" ॥ २०८ ॥

208 'Bharata! The event which in your opinion has cast a shadow of blemish on you, we consider it an auspicious occasion for learing how to acquire perfection in devotion to the Lord and enjoy the divine bliss accompanying it'. The path of devotion is unique in the sense that it gives one the taste of its fruit, the divine bliss, right from the start. However the indulgence of the aspirant in enjoying the pleasures derived out of sense objects simultaneously, reduces the quantum of divine bliss considerably. Even when one is able to severe the contact with the objects their attachment lingers on in the heart. This is acknowledged by the Lord in Geeta chapter II verse 59. Bharata improvised the path of devotion by negating all desires even that of salvation right from the beginning. The devotee in Bharat sets the example of the bird 'Chataka' who does not care when his love for the clouds would fructify and whether the cloud rewards him or punishes him with hail storm and lightning, it continues to call out the beloved. The

****

absence of desire from the path of devotion enables one to a large extent to experience divine bliss.

The incarnation of Bharata appears to be solely aimed at showing this improvised technique of devotion to the deserving aspirants. Therefore the Muni called Bharata, "You are the embodiment of Love of the Lord".

मुनि भरद्वाज कहते हैं– हे भरत! तुम्हारा यश द्वितीया के चन्द्र के सदृश्य है। वैसे तो उसको देख कर सभी लोग प्रसन्न होते हैं परन्तु कुमुद और चकोर रूपी श्री राम के दास विशेष आनन्दित होते हैं। यह चन्द्र जगत् रूपी आकाश में सदा उगा रहता है कभी छिपता नहीं है। दिन में भी नहीं। यह कृष्ण पक्षीय चन्द्र की तरह घटता नहीं अपितु दिनों दिन बढ़ता जाता है।

कहते हैं अकबर को उनके सभाके एक रत्न ने पूनम के चाँद की उपमा दी। बीरबल ने उसके तुरत बाद कहा नहीं हमारे बादशाह तो 'चान्दे नौ' यानि नव विधु के समान हैं। इस पर पहले विद्वान् ने रोष प्रकट किया कि बादशाह को बीरबल ने छोटा सिद्ध करने की दुष्टता की है। अकबर स्वयं भी चकित थे कि बीरबल ने ऐसा क्यों कहा। बीरबल ने उत्तर दिया कि नव विधु तो दिन प्रतिदिन बढ़ेगा। परन्तु पूनम का चाँद तो घटता जाएगा। हम यह नहीं चाहते कि बादशाह के व्यक्तित्व में अथवा उनके प्रभाव में कभी कमी आये। इसीलिए हमने उन्हें 'चान्दे नौ' कह कर मुखातिब किया। यह उत्तर सुन कर सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

कविकुलचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भरत जी के यशोचन्द्र को नव बिधु और दिन दिन दूना कह कर जो भाव व्यक्त किया उसी का अनुसरण बीरबल ने संभवतः किया होगा॥ २०८.१॥

****

208.1 The flawless glory of Bharata is likened to the new moon by the Muni. The devotees of the Lord are like the 'kumud' and 'Chakore' whose love of moon is exemplary. This moon never sets or disappears and always remains in the sky even during the day. Not only that but it grows bigger day by day.

Once a learned gem of king Akbar's court likened Akbar to full moon. Birbal at this said that it would be more appropriate to compare the king with new moon. The court people as well as the king were baffled. The learned man was angry and said, "How could you belittle the king by calling him new moon which is much smaller"? Birbal said, "The new moon will grow bigger everyday whereas the full moon will go on decreasing. I don't want a decline in my king's status. I would wish him to grow." At this everyone felt happy. The wise Birabal seems to have taken the idea from saint Tulasidas's above verse.

भरत जी का यश रूपी चन्द्र सामान्य चन्द्र से बहुत प्रकार से आगे बढ़ा हुआ है। एक तो ऊपर कह आये हैं कि भरत यश चन्द्र सदा उदित रहता है, वह न कभी अस्त होगा और न घटेगा अपितु दिन प्रतिदिन दुगुणा होता जायेगा। तीनों लोक चकवे की भाँति इस पर प्रेम करेंगे। प्रभु श्री राम का प्रताप रूपी सूर्य इस के सौंदर्य को हरण नहीं करेगा। यह सभी को दिन और रात्रि में सदा समानरूप से सुख देगा। लौकिक चन्द्र की तरह इसको कैकइ ने जो कुछ किया उस क्रिया जैसे राहु से यह ग्रस्त नहीं होगा॥ २०८.२ ॥

208.2 'The Moon of glory of Shri Bharata would be dear to the three worlds like the normal moon to 'chakva'

bird. Normally during the day the shine of the moon is lost due to the bright light of the sun. But the moon of glory of Bharata would not be affected by the sun of the Glory of Shri Rama. Moreover it would always be comforting to all, day and night. It would also not be eclipsed by the doings of Kaikayee, the Rahu.'

श्री राम के पवित्र प्रेमरूपी अमृत से भरत यशोचन्द्र पूर्ण है। चन्द्रमा में गुरु के अवमान का जो दोष है वह भी भरत के यशचन्द्र में नहीं है। भरत! तुम ने राम भक्तों को प्रेमामृत से तृप्ति के लिये धरती पर इस सुधा को सुलभ कर दिया है। अमृत तो देवताओं के लिये स्वर्गादि लोकों में ही उपलब्ध है। धरती पर उस का मिलना असंभव है परन्तु भरत जी के यश चन्द्र ने धरती पर ही राम भक्तों को भक्ति सुधा सुलभ करा दी है॥२०८.३॥

204.3 The Moon of glory of Bharata is full of the nectar of extreme love of Lord Rama. Unlike moon it is not soiled by the disrespect of guru. 'Bharata! you have made the Nectar of devotion accessible to devotees of Shri Rama on the earth who would now drink it to their hearts' content'. Ordinarily nectar is available to gods in heaven. It is extremely rare for men on earth. But the nectar of devotion has been made available to devotees on Earth by the grace of Bharata.

धरती पर रहने वाले प्राणियों के लिये राजा भगीरथ ने गंगा जी को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा। गंगा जी स्मरण मात्र से सभी कल्याणों को एक खान की तरह उपस्थित कर देती हैं। इसी प्रकार का उपकार महाराज दसरथ ने किया जिन के गुणसमूहों का वर्णन किया नहीं जा

****

सकता। उन से अधिक क्या उनकी बराबरी का भी गुणवान् इस जगत् में उत्पन्न नहीं हुआ॥ २०८.४ ॥

208.4 The question arises– Are there other examples of persons who have made heavenly things available to the earthly beings. Yes of course! The king Bhagiratha brought the Ganga, a river of the gods, on earth by his penance of the highest order. The Ganga has been a boon to the people so much so that its mere remembrance opens the flood gates of righteous pleasures of all types. Similar act of general good was performed by the king Dasratha whose qualities one can never count. None has so far been born with so much qualities as him.

जिन्ह दसरथ जी के प्रेम और संकोच (शील) के बस भगवान् राम उन के घर पुत्ररूप में प्रकट हुये। श्री राम के उस सुन्दर विग्रह को (और तो क्या) भगवान् शंकर अपने हृदय नेत्रों से देखते हुये कभी तृप्त नहीं हुए॥ २०९ ॥

209 It was the devotion and humility of Dasratha that caused the Lord to assume the human form of Shri Rama which was so fascinating that even Lord Shiva would not ever feel fully contented visualising it in his heart with eyes closed.

'राजा भगीरथ और महाराज दसरथ से भी बढ़कर भरत तुमने कीर्तिमान स्थापित किया है। तुम्हारा यशोचन्द्र अनुपम है। उस कीर्ति चन्द्र में हिरन के आकार के स्थान पर राम प्रेम बसा हुआ।'

हे प्रिय भरत ! तुम हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि कर रहे हो। यह तो

****

ऐसे ही हुआ जैसे कोई पारस मणि के पास होते हुए भी दरिद्रता से डर रहा हो।'

मानस में चन्द्र की उपमा प्रथम श्री सीता जी के मुख की छवि को लेकर भगवान् श्री राम ने बाल काण्ड में दी है। पंर बेचारा चन्द्र वहाँ उपमेय से परास्त हो गया। भगवान् कहते हैं–

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सिय बदन सम हिमकर नाहीं।।
दो० जनमु सिंधु पुनि बन्धु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्दु बापुरो रंक।।
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।।

उपरोक्त प्रसंग में भगवान् ने बहुत से अवगुन चन्द्रमा के माथे मढ़ दिये। अन्त में यह कह दिया कि "अवगुन बहुत चन्द्रमा तोहीं"

प्रस्तुत प्रसंग में भी भरत के यशोचन्द्र के सामने चन्द्र फीका पड़ गया। यहाँ मुनि भरद्वाज जी ने चन्द्र की कमिओं को उजागर किया पर चन्द्र को यह इतनी बुरी लगने वाली बात नहीं थी।

पुनः भगवान् श्री राम ने लंका काण्ड में चन्द्रमा को उदित हुआ देख उसमें दीखने वाले कालेपन का कारण सेवा में उपस्थित अपनी मन्त्री परिषद् से पूछा। इस विषय में सुग्रीवादि ने अपना विचार प्रकट किया। उन विचारों में ससि की प्रशंसा कम और दोष अधिक बताये गये। जब भगवान् ने इस विषय पर अपना मत प्रकट किया तो उन्होंने चन्द्रको 'गरल बन्धु' कह कर फटकारा। भगवान् ने कहा-

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी।।

****

इस बार ससि ने भगवान् के मुखारबिन्द से जब वैसे ही कड़े शब्द सुने जो पहले बाल काण्ड में सिय मुख छवि के वर्णन के समय सुने थे तो चन्द्र को विशेष पीड़ा का अनुभव हआ कि भगवान् अभी भी मुझ दास पर रुष्ट हैं। अब जायें तो किस की शरण में जायें ? तब चन्द्र देव ने सिया राम जी के सब से प्रिय भक्त हनुमान जी के यश का चिन्तन किया। 'संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरे हनुमत बलबीरा' चन्द्रमा के विनम्र भाव को देखते हुए हनुमान जी ने चन्द्र को प्रभु श्री राम का कृपा भाजन बनाने के लिये प्रभु से निवेदन किया-

दो॰ कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास।।
पवनतनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान।।

हनुमान जी ने कहा, "प्रभु ! चन्द्रमा तो आप का प्रिय सेवक है। आप की मूर्ति उस के हृदय में बसति है, वही श्याम बरण की परछाई उस में दीखती है।''

हनुमान जी से चन्द्रमा की प्रशंसा भरे वचन सुन कर भगवान् राम के मन में जो चन्द्रमा के प्रति चिरकालिक आक्रोश था वह समाप्त हो गया और वे हँस कर पूरब दिसा से अपनी दृष्टि हटा कर दक्षिण दिसा की ओर देखने लगे यानी चन्द्रमा को भगवान् ने हनुमान जी की संस्तुति सुन कर क्षमा कर दिया। आखिर चन्द्रमा का अपराध क्या था? जिस पर सुकोमल स्वभाव श्री राम भी रुष्ट हुये। गुरु अवमानता ही चन्द्रमा का अपराध था। भगवान् श्री राम मर्यादापुरुषोत्तम कभी गुरु की अवमानता सहन नहीं करते। भगवान् शंकर ने भी गुरु अवमानता से क्रोधित होकर काक जी को उनके पूर्व जन्म में श्राप दिया था।

****

"अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस" (उत्तर का० १०६)

गुरु के अपमान रूपी अति घोर पाप को महेश सहन नहीं कर सके ॥ २०९.१ ॥

209.1 "Bharata! Your glory surpasses even that of king Bhagiratha and king Dasratha. The Moon which your glory has created is matchless. The love of Lord Rama resides in it as the form of a deer resides in the celestial moon.'

Muni Bhardwaj told Bharata about the futility of his self reprimanding thoughts, which made him look like a person who possess the Touch stone and still is afraid of poverty.

In Ramcharitmanas (Balkanda) Lord Rama seeing the moon rise in the east tried to compare the beauty of the face of Shri Sita with the moon. However the poor moon could not stand ground in the comparison as Lord Rama failed the moon on so many counts (Balkanda Verse 237)

Again in 'Lanka Kanda' the Lord seeing the moon rise in the east asked his chief warriors what the black spot in the moon was? Sugriva and others expressed their opinion in which the moon was praised less and faulted more. When the Lord expressed his view he called moon the 'Brother of poison' and added that the moon had let his dear brother stay in his heart. Therefore the rays of the moon associated with poison burned the men and women separated from their beloved ones.

This time the moon felt very uneasy to hear harsh comments of the Lord a second time. He thought

****

deeply about how could he make the Lord soft towards him. He recalled the high esteem in which the Lord held his dearest devotee Hanuman. He sincerely remembered the glory of Hanuman of freeing his devotees of all troubles. Hanuman ji at once knew what the moon's thoughts were. Hanuman ji in order to mould the opinion of the Lord in moon's favour said, "O Lord the moon is you dear devotee and your form is embedded in his heart and therefore the greyish tone matching the lustre of your body." Hearing the words full of praise of moon, the Lord smiled and pardoned the moon.

What exactly was the fault of the moon which had made the Lord unhappy? It was the utter disrespect once shown by the moon to the guru Brihaspati which had made the Lord angry. Lord Rama would not like anybody especially his devotees to deviate from the righteous behaviour. Guru's insult is the sin of the lowest degree. Lord Shiva had also punished Kakbhusundi in one of his previous births because of his disrespect to the guru.

मुनि भरद्वाज कहते हैं कि, 'हे भरत ! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं (किसी का पक्ष नहीं करते) तपस्वी हैं (किसी की चापलूसी नहीं करते)' और वन में रहते हैं (किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते)। आश्चर्य है ! मुनि भरद्वाज को भरत सरीखे साधु महापुरुष को अपनी बात पर विश्वास दिलाने के लिये इतनी बड़ी भूमिका बाँधनी पड़ी। बात यह है कि भरत जी परम साधु हैं इसीलिये जो बात मुनिवर कहने जा रहे हैं उसे प्रथम तो भरत जी सुनना ही नहीं चाहेंगे। यदि सुन भी ली तो उसके अनुसार उनकी धारणा नहीं बन पाएगी क्योंकि उस बात में भरत जी की प्रशंसा एवं यश को शिखर तक मुनि पहुँचा

****

देंगे। पर बात सत्य होने के कारण एवं भरत के मन की ग्लानी दूर करने के उद्देश्य से मुनि भरद्वाज उसे इतनी भूमिका बांध कर कह रहे हैं ताकि भरत जी उसे सुन कर ग्लानि मुक्त हो जायें। मुनिवर कहते हैं, "हमने जीवन में जितने भी साधनों का अनुष्ठान किया है उनका सुयोग्य अत्युत्तम फल हमें लखन लाल, भगवान् श्री राम, भगवती सीता जी के दर्शनों में प्राप्त हुआ।'' ॥ २०९.२ ॥

209.2 Muni Bhardwaj said, "O Bharata! Listen, we do not tell lies. Being neutral (we do not take sides), doing penances (we do not believe in pampering others), we live in the forest (do not expect anything from others)". Is it not strange that Muni Bhardwaj had to convince a gentleman like Bharata that what he was going to say was simple truth with no exaggeration? The fact is that Bharata being a saint of the highest order would not like to hear his praises. Even if somebody said such words he would never had taken it seriously. Therefore the Muni had to emphasize that what he was going to say was truth and deserved full attention of Bharata. The Muni's aim was not as so much to praise Bharata but to relieve him of the feeling that he had hurt Shri Rama by his conduct. The Muni said, "Whatever all penance I have done was extremely well rewarded when Shri Laxman, Lord Rama and Sita blessed me with thier visit."

'श्री राम, सीता, लक्ष्मण के दर्शनों का फल हमें, भरत ! तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ और प्रयागराज सहित हम अपना सौभाग्य मानते हैं। हे भरत ! तुम धन्य हो जो जगत् में अपने उज्ज्वल यश को उत्पन्न किया है'। ऐसे कहते मुनि प्रेम में डूब गये॥ २०९.३ ॥

****

उपर्युक्त शब्दों द्वारा भरत जी की महिमा को मुनि ने शिखर तक पहुँचा दिया। श्री राम दर्शन साधन है और श्री भरत दर्शन उस साधन का फल मुनि मानते हैं। यह एक नवीन कल्पना भरद्वाज मुनि ने प्रस्तुत करके भक्ति की महिमा को चार चाँद लगा दिये हैं। भरत चरित्र को अयोध्या काण्ड में गोस्वामी जी ने बड़ी श्रद्धा, प्रेम और निष्ठापूर्वक वर्णन किया है। अन्त में भरत चरित्र श्रवण की महिमा में वे कहते हैं-

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भवरस बिरति।।

आदरपूर्वक नियमित भरत चरित्र श्रवण से संसार से वैराग्य और प्रभु श्रीसीताराम के चरणों में अनुराग अवश्य प्राप्त हो जाता है।।२०९.३।।

209.3 "We consider the reward of the visit of Shri Rama, Sita and Laxman is the visit by you, Bharata. We alongwith Prayagraj are really very fortunate. You are the blessed one, O Bharata! You have generated such high glory in this world". Speaking thus, the Muni was overwhelmed with love.

Through these words, the Muni has glorified Bharata to the extreme. The Muni has invented a noval concept to eulogize devotion. The exalted devotees of the Lord seek devotion evenafter they are blessed with the glimpse of the Lord. The saint poet has depicted the life of Bharata with atmost faith, devotion and conviction in Ayodhya Kand at the end of which the poet pens down the reward of listening regularly with love the life of story Bharata and that is, sure freedom from passion for the worldly pleasures and sure devotion to the Lord Shri Rama's feet.

****

मुनि भरद्वाज के वचन सुन कर सभा में उपस्थित सभी हर्षित हुये। आकाश में देवताओं ने साधु साधु कह कर सराहना करते पुष्प वर्षा की। आकाश एवं प्रयागराज में धन्य धन्य की ध्वनि गूंज उठी। उसे सुन सुन कर भरत अनुराग में मगन हो गए॥ २०९.४ ॥

209.4 Listening to the words of the Muni, the whole audience felt happy. In the sky the gods exclaimed, "You are a saint, a saint, and praising Bharata showered flowers. The sky and Prayagraj resounded with the sound– "you are the blessed one, the blessed one", hearing which Bharata was overwhelmed with devotion.

भरत ने मुनि भरद्वाज के मुख से अपने विषय में प्रमाणित संस्तुति सुन कर भी न केवल निर्विकार रहे अपितु भगवान् के स्नेह में मगन हो गये। उन का शरीर पुल्कित हो गया, हृदय में सीता राम के दर्शन करते हुये नेत्रकमलों में जल भर आया। उन्होंने मुनि मण्डली को प्रणाम करके गद गद बचन बोले॥ २१० ॥

210 Bharata was not the least elated by authentic words of praise showered by the Muni and endorsed by the gods and men alike. On the other hand he was overwhelmed with the love of the Lord. His body was thrilled and lotus eyes got wet as he visualised the form of Shri Sita Rama in his heart. Bharata saluted the group of Munis and spoke in a voice chocked with emotion.

पिछले दोहे में भरत जी ने मुनिमण्डली को प्रणाम किया। वास्तव में उन्होंने प्रणाम तो भरद्वाज मुनि को किया होगा जो उस मण्डली के मुख्य थे। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि मुनि मण्डली अथवा मुनि समाज से गोस्वामी तुलसीदास जी का आशय मण्डलीश यानी मुखिया से है जिन्हें

भरत जी संबोधित करने जा रहे हैं। हम प्रारम्भ में 'मुदमंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीर्थराजू॥' में जो अर्थ संत समाज का कर आये हैं उसकी यहाँ पुष्टि होती है।

भरत जी मुनि भरद्वाज जी का अनुकरण करते हुये अपने वक्तव्य की सत्यता की भूमिका बाँधते हैं। वे कहते हैं 'मुनि समाज' और तीर्थराज प्रयाग के बीच में सच्ची सपथ लेना भी बहुत बड़ा दोष माना गया है। इस पावन स्थल पर यदि कुछ बना कर झूठ कहा जाय तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता नहीं होगी। (अत: मैं बिना शपथ लिये ही अपनी सत्य बात कहता हूँ)

यहाँ मुनिसमाजु और तीर्थराजू का युगपद प्रयोग जंगम और स्थिर तीर्थराज की ओर संकेत करता है अथवा केवल मुनि समाजू यानि मुनि भरद्वाज जी की ओर संकेत करता है जो गोस्वामी जी की मान्यतानुसार जंगम तीर्थराज हैं॥ २१०.१॥

210.1 In the last Doha (Verse) Bharata saluted group of Munis. In reality Bharata must have saluted Bhardwaj Muni who was the head of Munis and whom Bharata was going to address. This makes one thing clear that by group of Munis or saints the poet Goswami Tulsidas ji implies their head. Therefore what we inferred in the beginning (Balkanda) that Tulsidas ji had referred to the head of group of saints when he compared the group of saints with king of holy places viz Prayagraj was correct

In the present verse Bharata emulates Muni Bhardwaj in backing his speech with such words as to generate conviction about its truthfulness. Bharata said; "Swearing over even a right stance in front of a group of saints (meaning their head, a realised saint) and the king of holy places is considered very harmful. Here

uttering cooked up words is sin of the lowest level. (Therefore I would speak the truth without swearing about the correctness of my speech.)

Here the use of words 'group of munis' and 'king of holy places side by side may mean both the moving and the steady Prayagraj or it may mean only the group of munis viz the leader Muni Bhradwaj who is also a moving Prayagraj as per the definition provided by the learned poet.

अपनी कही जाने वाली बात की सत्यता की भूमिका के रूप में भरत आगे कहते हैं कि मुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं और भगवान् श्री रघुनाथ जी अर्न्तयामी होने से हृदय की बात को जानते ही हैं। अतः मैं सच्चे भाव से कहता हूँ कि मुझे माता कैकेई की करनी का कुछ भी सोच नहीं है। मेरे मन में यह भी दुःख नहीं है कि जगत् मुझे नीच समझेगा॥ २१०.२॥

210.2 Bharata continues to strenghthen his position with regard to the fact that he would speak the truth. He told the Muni that, "You are omniscient and Shri Rama being the indweller of all beings knows my mind. I cannot hide anything from you and Shri Rama. Therefore I truthfully express my feeling that I am not worried about what mother (Kaikayee) has done. I am also not pained in my heart that people will know me as a mean person."

'मुझे परलोक के बिगड़ने का भी कोई भय नहीं। पिता जी के मरने का भी मुझे सोक नहीं है। उनका पुण्य और सुयश तो विश्व भर में सुशोभित हो रहा है कि उन्होंने लक्ष्मण और श्री राम सरीखे सुपुत्र प्राप्त किये'॥ २१०.३॥

****

210.3 'I am not afraid to be unfit for heaven nor do I mourn the death of my father because the world is full of shine of his excellent glory and pious deeds and that he fathered sons like Laxman and Shri Rama'.

'उन्होंने इस क्षणभंगुर देह को प्रभु श्री राम के बिरह में त्यागा। अत: राजा दसरथ जी के विषय में सोक का तो प्रसंग ही नहीं है। मुझे तो सोच इस बात की है कि श्री राम, लक्ष्मण, सीता जी नंगे पाँव, मुनियों का बेष धारण कर बन बन में घूम रहे हैं'।

भरत जी ने अपने चिन्तन का स्वरूप बतला कर भक्ति की मर्यादा की पुष्टि की है। भक्त के हृदय में प्रभु के अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तु, प्राणी अथवा परिस्थिति का कोई महत्त्व नहीं होता। वह तो केवल परमात्म चिन्तन में ही लीन रहता है। यह भाव तो ठीक ही है परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि भरत जी ने अपने दिवंगत पिताश्री के लिए 'भूप' शब्द का प्रयोग क्यों किया। क्या महाराज दसरथ केवल राजा थे? क्या भरत जी के मन में पिजा जी के व्यवहार के बारे कुछ असंतोष था? ऐसा प्रतीत होता है कि भरत जी अपने प्रभु श्री राम के बन गमन में माता के साथ तो रुष्ट थे ही इसके साथ पिता जी के प्रति भी कुछ हृदयमालिन्य रखते थे। संभवत: वे यह समझते थे कि पिता जी ने उस समय बतौरे एक राजा अधिक निर्वाह किया। कैकेई पर प्रसन्न होकर उसे दो बरदान देना एक राजा की प्रकृति के ही अनुरूप था। भरत जी ने कैकेई को फटकार सुनाते समय भी अपने पिताश्री के लिये भूँप एवं राऊ शब्दों का ही प्रयोग किया–

भूँप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।
सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ।।

यद्यपि भरत सरीखे अनुपम विवेकशील पुत्र द्वारा उनको 'राजा'

कह कर बात करना बहुत कुछ अर्थ प्रकट कर देता है, परन्तु हमें भरत जी द्वारा पितृ-गुण वर्णन को भी साथ-साथ स्मरण करते हुए उन की पितृ भक्ति पर संदेह नहीं करना चाहिए॥ २१०.४ ॥

210.4 "The abandoning of this short lived body because of Shri Rama's separation makes nonsense of any worry connected with king Dasratha's departure. The actual cause of my worry is the wandering of Shri Rama, Laxman and Sita bare–footed wearing the dress befitting a muni (ascetic)."

Bharata's feelings have endorsed the discipline necessary for following the path of devotion. For a true devotee of the Lord, things, persons or circumstances have no meaning other than directed towards love of God. A devotee's thoughts are always secured in the Lord alone. So far so good. The point to be really thought about in this verse is why an ideal person of Shri Bharata's stature would use the word king for his dead father. Was Dashratha only a king in Bharata's estimation? Did Bharata had any reservations about the role played by his father? These are questions which arise and which we shall try to answer briefly.

It appears Bharata did not relish the way king Dasratha agreed to grant two boons to his mother resulting in sending Shri Rama to forest. Bharata felt that his father had played predominantly the role of a king. Giving of two boons to Kaikayee for some service was in tune with the nature of a king only. Bharata while reprimanding his mother for sending Shri Rama to forest had said, "How did the king have faith in you? It seems the destiny had failed his intellect at his last moments. The king was straightforward gentleman and of righteous

deeds". Here also Bharata has used the word 'king' for his father.

Even though the remarks of wise and ideal son Bharata in calling his father a king leaves much to be said, but we should not, at the same time, forget the handsome tributes paid to his father by Bharata which establishes his overall love and respect for the father.

'श्री राम सीता लक्ष्मण बल्कल वस्त्र धारण किये, फलों का भोजन कर धरती पर घास पत्तों के बिछोने पर शयन करते हैं। वे पेड़ के नीचे रह कर सदा सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा का प्रकोप सहन करते हैं' ।।२११।।

211 "Shri Rama, Sita and Laxman wearing clothes made out of tree bark, eating fruits as meal, resting on earth on a bed of grass and leaves and living under a tree are always bearing the brunt of cold, heat, rain and wind."

'इसी दु:ख की जलन से निरन्तर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिन में भूख लगती है न रात्रि को नींद आती है। इस कुरोग की कोई औषधि नहीं है जिसके लिये मैंने मन में सारा विश्व खोज डाला' ।।२११.१।।

211.1 'My heart always burns by the heat of this agony. My hunger during the day and sleep during the night have vanished. I have searched the whole world in my mind, but don't see any remedy for this ailment'.

यह रोग किस प्रकार उत्पन्न हुआ, इस पर कहते हैं–

माता का उल्टा विचार ही पापों का मूल बढ़ई है। उसने हमारे हित को ही बसूला बनाया। उस बढ़ई ने इस बसूले से कलह रूपी कठिन लकड़ी का एक कुयन्त्र (अटपटी मशीन) बनाई। उस कुयन्त्र को उसने

****

चौदह वर्ष की अवधि रूपी कठिन कुमन्त्र पढ़ कर गाड़ दिया। वह कुयन्त्र भरत जी को बांधने के लिये बनाया इस बात को आगे कहेंगे ॥ २११.२ ॥

211.2 How this ailment developed is explained by Bharata in a unique way—

"The ill concept of the mother is like a carpentar who is born out of sin. My so called welfare was the tool in his hands. He made an ugly mechanism using wood of chaos. This mechanism was fixed uttering a harsh formula of the black magic constituting the period of fourteen years." The mechanism was meant for Bharata as told further.

भरत जी कहते हैं कि- 'यह कुयन्त्र रूपी बुरा साज मेरे लिये उसने रचा परन्तु इससे मुझे ही नहीं सारे जगत् को छिन्न-भिन्न करके नष्ट कर दिया। यह कुयोग तभी मिट सकता है यदि राम लौट कर अयोध्या में बस जायें अन्य किसी उपाय से यह कष्ट दूर नहीं होगा ॥ २११.३ ॥

211.3 "The above ill mechanism was meant for entangling me. However besides me it frittered away and tormented the whole world. This arrangement will break only if Shri Rama returns to Ayodhya. There is no other way to dismember it."

भरत जी के वचन सुन कर भरद्वाज मुनि ने सुख का अनुभव किया। सब ने बहुत प्रकार से भरत जी की बड़ाई की। मुनि भरद्वाज जी ने कहा, 'हे तात तुम विशेष चिन्ता न करो। तुम्हारे सब दुःख श्री राम के चरणों के दर्शन होने से मिट जायेंगे' ॥ २११.४ ॥

211.4 Muni was pleased to here Bharata's words. Everybody praised Bharata in so many ways. The Muni told Bharata not to have worry on any particular count

****

and that all troubles would cease on seeing the feet of Shri Rama.

मुनिवर भरद्वाज जी नें भरत का समाधान करके कहा कि आप सब हमारा प्रेममय आतिथ्य स्वीकार करो और जो हम कंद मूल फल फूल अर्पण करें उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण करो ॥ २१२ ॥

212 Muni Bhardwaj after reassuring Bharata asked him to be their loving guests and accept with reciprocatory love whatever roots, fruit, flowers etc. were offered.

मुनि की बात सुन कर भरत जी के हृदय में चिन्ता हुई कि आज बेमौके यह कठिन संकोच उपस्थित हो गया। फिर बड़ों के बचन को श्रेष्ठ समझ कर मुनि की चरणबन्दना करके दोनों हाथ जोड़ कर निवेदन किया ॥ २१२.१ ॥

212.1 Bharata was worried in heart to here the words (invitation) of Muni. He thought that a cause of acute embarrassment had come at an odd time. However, considering the weight the guru's words carry, Bharata bowed to Muni's feet and with folded hands said–

हे नाथ आप की आज्ञा को शिरोधार्य करना हमारा परम धर्म है'। भरत के वचन मुनिबर के मन को बहुत अच्छे लगे। उन्होंने अपने स्वच्छ शिष्यों और सेवकों को निकट बुलाया ॥२१२.२ ॥

212.2 "O Master! It is our first and foremost duty to carry out your orders." These words of Bharata appealed to Muni's heart. He called his disciples and sincere servants near.

मुनि ने कहा कि भरत की पहुनाई करनी चाहिये। जाकर कंद मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे नाथ बहुत अच्छा' कह कर सिर नवाया

****

और वे बड़े आनंदित होकर अपने अपने काम को चल दिये॥ २१२.३॥

212.3 The Muni said, "We should offer hospitality to Bharata. You go and bring 'kand', roots and fruits." They all bowed their heads saying 'Yes Sir!' and feeling extreme happiness set out for their work.

मुनि भरद्वाज को चिन्ता हुई कि हमने एक बड़े अतिथि को नेवता दिया है। अब जैसा देवता हो वैसी ही उसकी पूजा होनी चाहिए। यह सुन कर ऋद्धियाँ और अनिमादिक सिद्धियाँ आ कर उपस्थित हो गईं और बोली– हे गोसाईं जो आप की आज्ञा हो सो हम करें॥ २१२.४॥

212.4 Muni Bhardwaj got worried that, "We have invited a great guest. Now as the saying goes the worship should be as per the status of the deity." Hearing these words of the Muni the Ridhis and the Sidhis of eight types beginning with Anima appeared before the Muni and said, "O Master, we are here to do what you would command".

मुनिराज भरद्वाज जी ने प्रसन्न हो ऋद्धि सिद्धियों से कहा कि श्री राम के वियोग में भरत जी छोटे भाई शत्रुघ्न और सभी समाज सहित व्याकुल हैं। उनकी पहुनाई करके उनका श्रम दूर करो, यही मेरी आज्ञा है॥ २१३॥

213 Pleased by their obedience the king among Munis said to Ridhis and Sidhis, "Shaken as they are due to separation from Shri Rama, go and offer hospitality to Bharata along with his younger brother and the group of people accompanying them to relieve them of the exertion."

ऋद्धि सिद्धियों ने मुनिबर के वचनों को शिरोधार्य कर अपने आपको बहुत भाग्यशाली माना। वे परस्पर यह कहने लगीं कि श्री राम

****

के छोटे भाई भरत जी अद्वितीय अतिथि हैं (मुनिवर की कृपा से हमें उनकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।)॥ २१३.१॥

213.1 The Ridhis and Siddis accepted the words of the exalted Muni with bowed heads and considered themselves very lucky. They spoke among themselves that the younger brother of Shri Rama was a guest the like of which they would never meet.

ऋद्धि सिद्धि कहती हैं–

मुनि चरणों की वन्दना करके आज वही करें जिस से यह सभी राज समाज सुखी हो जायें। इतना कह कर उन्होंने नाना प्रकार के सुन्दर घरों की रचना की जिन्हें देख कर बिमान भी बिलखते हैं (विलाप करते हैं कि विधाता ने हमें इतना सुन्दर क्यों नहीं बनाया)॥ २१३.२॥

213.2 The Ridhis and Sidhis talking among themselves further said, "Paying our obeisance to the (holy) feet of the Muni we should today work in such a way as to make the king's people comfortable." Having said so they created beautiful houses of various types seeing which even the 'Vimanas' (air carriers of gods) considered to be the most beautiful and comfortable residences felt envious.

उन घरों में बहुत से भोग (सामग्री) और ठाट-बाट का सामान भर कर रख दिया जिन को देख कर देवताओं को भी अभिलाषा होने लगी कि काश हमारे पास भी इतना भोगैश्वर्य होता। क्या वहाँ खाली सामान ही था, कोई नौकर चाकर नहीं थे? नहीं ऐसी बात नहीं, दासी और दास सब सामान लिये उपस्थित थे। वहाँ अतिथियों को कुछ कहने

****

की भी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वे दासी दास उनके मन में अपने मन द्वारा झाँक सकते थे और उनको बिना बताये ही इस बात का पता चल जाता था कि इस समय हमारे अतिथि की क्या इच्छा है ॥२१३.३॥

213.3 Those houses were full of things of enjoyment and comfort with articles of grandeur of such level as even the gods in heaven would wish to possess. Besides things, there were servants and maids ready to serve these things. There was also no need for the guests to register their request using their speech as the service personnel had the power to read the mind of their guests through their mind and provide the desired objects accordingly.

एक पल में सिद्धियों ने सब सामान एवं दास दासियों को सजा कर प्रस्तुत कर दिया। उन सुखों के बारे में इतना कहना ही कविराज पर्याप्त समझे हैं कि वह सुख स्वर्ग में रहने वाले स्वप्न में भी नहीं भोग सकते। पहिले तो सब अतिथियों को सुन्दर निवास उनकी रुचि के अनुसार दे दिए गये ॥ २१३.४ ॥

213.4 The Sidhis completed all the arrangements in a few seconds. The level of the comforts provided can be gauged by the fact that the gods in heaven could not even dream to enjoy those. First of all the guests were provided with beautiful and comfortable accommodation as per their choice.

फिर भरत जी और उनके परिवार की व्यवस्था के लिये ऋषि ने कुछ ऐसी आज्ञा दी जिस का पालन करते हुये और मुनि के तपोबल का प्रयोग करते हुए एक ऐसे ऐश्वर्य का निर्माण हुआ जिसे देख ब्रह्मा जी भी चकित रह गये।

मुनि भरद्वाज, भरत जी और उनके समाज की पहुनाई (मेहमाननवाजी) कंद मूल फल द्वारा ही करना चाहते थे, जैसे कि उन्होंने भगवान् श्री सीता राम लक्ष्मण और सखा की की थी। मुनि ने ऐसा ही आदेश अपने पावन शिष्य सेवकों को दिया भी – 'कंद मूल फल आनहु जाई'। सभी सेवक अपने अपने कार्य में जुट गये। ऐसे में मुनि के मन में (भवगवत्प्रेरणा) से विचार उत्पन्न हुआ कि 'तसि पूजा चाहिअ जस देवता' इस वाणी को सुन कर ही बिना मुनि द्वारा आह्वान किये रिद्धि सिद्धि उपस्थित हो गईं और मुनि की आज्ञा माँगी। मुनि भरद्वाज ने तो उन्हें इतना ही कहा कि भरत एवं उनके समाज की पहुनाई कर उनका श्रम दूर करो। ऋद्धि, सिद्धि ने अपनी समझ लगा कर राजोचित ठाट बाट उपस्थित कर दिया। ऐसा लगता है यह सब योजना भगवत्प्रेरणा से भरद्वाज मुनि के यश के लिए बनी।

भरद्वाज मुनि यह सब प्रबन्ध होता हुआ देख रहे थे और जब भरत जी के समाज की व्यवस्था हो गई तो सपरिवार भरत जी की व्यवस्था मुनि अपनी रुचि के अनुसार करने की आज्ञा देते हैं क्योंकि भरत जी तो अवाक खड़े यह दृश्य देख रहे थे। सपरिजन भरत जी के लिये व्यवस्था की आज्ञा ऋषि भरद्वाज जी ने यह विचार कर दी कि जब भरत जी के समाज के लिये व्यवस्था को देख कर देवलोक आश्चर्यचकित हो रहा है तो भरत जी की व्यवस्था उस से बढ़ कर होनी चाहये। तब उन्होंने अपने तपोबल से ऋद्धि सिद्धि के माध्यम से ऐसा वैभव प्रकट करवाया जिसे देख कर ब्रह्मा जी भी चकित हो गये। इन नूतन अलौकिक रचनाओं का विस्तृत वर्णन कविराज आगे करेंगे॥ २१४ ॥

214 Then for Bharata and his family members the Rishi himself gave directions obeying which the Ridhis and Sidhis using the power of Muni's penances created

****

such a magnificent outfit that even Brahma, the Lord of creation was stunned to see.

Actually Muni Bhardwaj only wanted to offer modest hospitality consisting of 'kand', roots and fruits to Bharata and his people like he had offered to Lord Rama, Sita, Laxman and Guhu. Accordingly the Muni had asked his disciples to bring 'Kanda' roots and fruit. In the mean while (by God's will) thought arose in the mind of Muni that the hospitality should be befitting the status of Bharata just as the worship of a deity is done according to its status. Hearing these unspoken or mildly spoken words of Muni, without any invitation or request the Ridhis and Sidhis appeared before Muni and asked for his directions. The Muni simply told them to offer hospitality to Bharata and his people so as to relieve them of the exertion. The Ridhi–Sidhis however, using their own judgement made available comforts befitting people and officials of a kingdom. This whole planning seems to have been guided by the God's will in order to glorify the Muni.

Muni Bhardwaj must have been watching with amusement the whole arrangement being made for Bharata's entourage. He must have thought when such was the arrangements for the citizens, something special should be made for Bharata and his kins. He therefore ordered accordingly and using the powers of Muni's penances the Ridhis and Sidhis created such an unworldly splendor that even the Lord of creation was stunned to see. The grandeur of the entire new creation is described by the saint poet in the following verse.

भरत जी ने जब मुनि का प्रभाव देखा तो उन्हें उस रचना के सामने सभी लोक और लोकपति फीके नजर आये। उस रचना के सुख

****

के साधनों का व्याख्यान करना असंभव है। उन्हें देख कर ज्ञानवान् भी वैराग्य को भूल कर उन भोग्गों को पाने की अभिलाषा करते हैं। ज्ञानी से यहाँ ब्रह्मज्ञानी नहीं अपितु शास्त्रज्ञानी अर्थ लेना चाहिए॥२१४.१॥

214.1 When Bharata saw the powers of the Muni, all the worlds and their masters appeared small to him. The means of comfort thus created were indescribable. Even the learned ones would be tempted to forgo their controls (and enjoy the comforts).

बैठने के लिए आसन, शयन के लिए बिछोना, पहनने के लिये सुन्दर लिभास, क्रीड़ा एवं उत्सव के लिए पण्डाल, बिहरन के लिये बन, सुख के लिये वाटिका, नाना प्रकार के पशु एवं पक्षी, सुगंधि युक्त पुष्प, अमृत तुल्य फल, निर्मल जलाशयों के विविध अकार प्रकार, ये सब भोग्य सामग्री एवं प्राकृतिक सौंदर्य के साधन वहाँ थे॥२१४.२॥

214.2 Seats, beds, beautiful dresses, tents, forests, gardens, birds and animals, flowers with intense fragrance, fruits comparable to nectar and clean ponds of different designs and sizes were all there.

पवित्र खाद्य पदार्थ और पेय जो अमृत के भी अमृत हैं जिन्हें देख कर सभी लोग संयमी पुरुषों की तरह भोगने में संकोच कर रहे हैं। कामधेनु और कल्पवृक्ष सभी के पास है जिन्हें निहार कर स्वर्गाधिपति इन्द्र भी इन्द्राणि सहित उन्हें प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं॥२१४.३॥

214.3 There were pure food and drinks tastier than the nectar, seeing which the people felt hesitant to touch like an aspirant on a controlled menu. Everyone possessed the divine cow 'Kamadhenu' and the Wish tree 'Kalpavriksha' which even the chief of gods Indra and his wife Sachi would like to have.

ऋतु बसन्त जैसा मौसम हो गया और शीतल मन्द सुगंध वायु चलने लगी। सभी के लिये उस समय चारों पदार्थ– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुलभ हैं। माला, चन्दन, अप्सरा आदिक भोगों को देख कर लोग हर्ष और बिस्मय का अनुभव कर रहे हैं॥ २१४.४॥

214.4 The season was changed into spring. Cool, gentle and scented breeze was flowing. Also available were garlands, sandal paste and lady artistes for enjoyment seeing which people were filled with pleasure and wonder.

सभी उपस्थित संपत्ति चकवी है और भरत जी चकवा हैं। मुनि जी की आज्ञा खेल है जिसने आश्रम रूपी पिंजरा में दोनों को उस रात बन्द कर रखा है। परन्तु क्या चकवे और चकवी का कभी रात्रि को संयोग हो सकता है अर्थात् नहीं क्योंकि यह प्रकृति के विरुद्ध है। ऐसे ही भरत जी जैसा पुरुष कभी मन से भी भोग विलास को छू नहीं सकता।

इस तमाशा से जहाँ एक ओर तो मुनि भरद्वाज जी के तप का यश हुआ तो दूसरी ओर भरत जी एक पूर्ण भक्त की कसौटी पर खरे उतरे॥ २१५॥

215 The entire means of enjoyment are like the female bird (Chakavi) and Bharata is like the male (Chakawa). The order of the Muni is the play which engages the two birds in one cage for enjoyment. But can this peculiar bird Chakawa ever unite with its counterpart at night. No, never, because of its nature. Likewise Bharata did not even mentally touch the things of enjoyment but instead he must have been busy in his prayers all the night. This episode reveals on the one hand the powers which an enlightened saint enjoys and

****

on the other it establishes the nature of a true devotee of the Lord in Bharata for whom only love and prayer of God are supreme. Such devotees shun sensual enjoyment like vomitted food.

प्रात: काल मुनि भरद्वाज को सिर नवा कर भरत जी ने अपने समाज सहित तीर्थराज प्रयाग में स्नान किया। फिर ऋषि से विदा होने की आज्ञा और आशीर्वाद लेकर शिरोधार्य किया और उनको दण्डवत प्रणाम करके बहुत विनम्र वचनों से उनका अभिनन्दन किया॥ २१५.१॥

In the early morning Bharata and his entourage bowed their head before the Muni and had a holy dip in Prayagraj. Bharata obtained the consent and blessings of Muni for departure. After saluting him lying on the ground, Bharata uttered humble words in praise of the Muni.

भरत जी ने रास्ते को जानने वाले लोगों को साथ लेकर सबके सहित चित्रकूट का चिन्तन करते हुये उस ओर प्रस्थान किया।॥ २१५.२॥

इति चतुर्थस्थल: ॥४॥

215.2 Bharata took along some persons to guide the way and with his mind fixed on Chitrakoot where Lord Rama was staying, he set out with all his people.

Thus ends Topic – 4



पाञ्चवाँ स्थल

अयोध्या काण्ड० दो० २७१ से

दुघरी साधि चले ततकाला। किए विश्रामु न मग महिपाला।
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा ॥ २७१.३ ॥

तीर्थराज प्रयाग का मानस में यह पाँचवा प्रवेश है। इसमें महाराजा जनक के तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने का संक्षेप में वर्णन है। प्रथम भगवान् ने तीर्थराज में स्नान किया था। तदन्तर भक्तराज भरत जी ने और अब महाराज जनक ने।

महाराज जनक ने जब राम बन गमन का समाचार सुना तो उन्होंने बड़ी सूज बूझ से चित्रकूट आने का निर्णय किया। श्री राम सीता के प्रेम में जनक जी भरत जी से पीछे नहीं हैं। वे दुघड़िया मुहूर्त साध कर तुरत जनकपुर से रवाना हुए। उन्होंने रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। दूतों ने आगे पहुँच कर चित्रकूट में जनक जी के आगमन की सूचना दी जिसमें उन्होंने कहा कि आज प्रात: महाराज ने प्रयागराज में स्नान किया और चल पड़े और जब वे सब यमुना जी उतर रहे थे तो हमें खबर लेने के लिए भेजा॥ २७१.३ ॥

इति पञ्चमस्थलः ॥ ५ ॥

TOPIC – 5 AYODHYA KANDA DOHA 271

271.3 It is the fifth mention of Prayagraj in Ramcharitmanas. This contains a brief reference of king Janaka's holy dip in Prayagraj. After Lord Rama and Bharata, king Janaka is third to visit Prayagraj in Ayodhya Kanda.

When king Janaka heard the news of Shri Rama's exile alongwith Sita and Laxman as also the death of Maharaja Dasaratha he acted with great wisdom and patience. Out of devotion and duty he took the decision to meet Shri Rama in Chitrakoot and at once set out shortseeing of auspicious time for departure on a journey. The couriers of king Janaka reached Chitrakoot ahead and informed that in the morning after talking a holy dip in Prayagraj the king started further and when they were crossing Yamuna he sent them to get the news of Chitrakoota.

Here we may briefly consider why king Janaka's visit to Prayagraj was so short. King Janaka was famous for his knowledge of the Supreme Lord. During marriage of his daughter Sita with Shri Rama, his knowledge had melted into devotion. He enjoyed the sweetness of devotion throughout the stay of Shri Rama at Janakpur. When he heard the news of Shri Rama's exile and decided to leave for Chitrakoot, the devotion of Shri Rama again dominated his knowledge. He was, therefore, in so great hurry to meet Lord Rama that he did not stop for rest on the way from Janakpur to Chitrakoot. In the circumstances, his finding time to take a holy dip in Prayagraj attaches sufficient importance to Prayagraj in the eyes of Janaka even if his stay there was so short.

Thus ends Topic – 5



छठा स्थल

अयोध्या काण्ड दो. २८५ से

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू।
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम पेम सिसु सोहा ॥ २८५.३ ॥
चिरजीवी मुनि ज्ञान बिकल जनु। बूढ़त लहेउ बाल अवलंबनु।
मोह मगन मति नहीं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की ॥ २८५.४ ॥

मानस में प्रयाग का यह छठा प्रसंग अयोध्याकाण्ड में जनक और सुपुत्री जानकी जी के मिलन के समय आया है। चित्रकूट में जब जनक जी श्री राम और गुरुदेव वसिष्ठ जी की आज्ञा पा कर अपने डेरे में पहुँचे तो वहाँ आई हुई सीता जी को उन्होंने देखा। उन्होंने पुत्री सीता को हृदय से लगा लिया जो पवित्र प्रेम को जीवन प्रदान करने वाली अभ्यागिता थीं। जनक जी के हृदय में प्रेम का सागर उमड़ पड़ा। इस प्रेममयी जलराशि में राजा जनक का मन मानो प्रयागराज बन गया। महाराज जनक तो परम ज्ञानी थे। उनका मन सरस्वती प्रधान था। वहाँ भक्तिरूपी गंगा और कर्म रूपी यमुना और ज्ञानरूपी सरस्वती संगम का संयोग उपस्थित नहीं हुआ था। परन्तु सगुण ब्रह्म श्री सीता राम के दर्शनों से उन का ज्ञान प्रेम में परिणत हो गया था यही ज्ञान और भक्ति (निष्काम कर्मयोग रूपी यमुना को भक्ति के अन्तर्गत ही समझना चाहिये) का संगम त्रिवेणी है जो उस समय जनक जी के मन की स्थिति बन चुकी थी। उस प्रयागराज में अक्षय वट के स्थान पर श्री सीता जी का प्रेम उन्होंने बढ़ता देखा और उस पर श्री राम प्रेम रूपी शिशु को सुशोभित हुये निहारा। इस शिशु के दर्शनों से जनक जी के भक्ति में परिणत हुए ज्ञान को अवलम्बन मिल जाने से परमानन्द प्रद शान्ति का अनुभव हुआ जैसे मुनि मार्कण्डेय जी को प्रलय रूपी जल में डूबते हुए बालकृष्ण के दर्शनों से शान्ति मिली थी।

भक्ति भाव प्रधान होती है और इष्ट का अवलम्बन भी उसमें होता है। जब जनक जी का ज्ञान श्री सीता जी को देखकर भक्ति में परिणत हुआ तो श्री राम के स्वरूप का अवलम्बन न पाकर कुछ निमेष भर उन्हें मन में विकलता का अनुभव हुआ परन्तु तुरत राम प्रेम शिशु का मन में दर्शन होने पर परम शान्ति का अनुभव हुआ। मार्कण्डेय मुनि की बिकलता बहुत बड़ी थी जो माया के कारण थी पर जनक जी की बिकलता क्षण भर की थी जो भक्ति के कारण थी। इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा कि महाराज विदेहराज की बुद्धि मोह में नहीं डूबी थी अपितु श्री सीता राम के प्रेम की यह महिमा है कि ज्ञानियों के हृदय में भी भाव को जगा देता है॥ २८५.३-४ ॥

मुनि मार्कण्डेय की बिकलता का संक्षिप्त इतिहास

मुनि मार्कण्डेय हिमालय स्थित अपने आश्रम में रह कर साधना करते थे। उन की ब्रह्मचर्य निष्ठा, तप, आराधना एवं यज्ञकर्मानुष्ठान से प्रसन्न होकर उन को भगवान् नर नारायण ने दर्शन दिये। भगवान् की सादर अर्चना स्तुति आदि करने में मुनि बड़े प्रेम पूर्वक तत्पर हुये। भगवान् का दर्शन अमोघ होने से भगवान् ने मुनि को वर मांगने के लिए कहा। मुनि ने भगवान् की माया के दर्शन पाने का वरदान मांगा। भगवान् तथाऽस्तु कह कर अन्तर्धान हो गये। मुनि को माया के दर्शनों की प्रतीक्षा करते बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन मुनि अपने हिमालय स्थित आश्रम में साधना में रत थे तो बड़े जोर की आँधी चली और घन्घोर बादलों से भयंकर वर्षा हुई और बिजली चमकने लगी। वर्षा के प्रकोप ने प्रलय काल के समान रूप धारण कर लिया। अब तो सारी पृथ्वी जल निमग्न होने लगी। मुनि मार्कण्डेय भी डूबने के भय से बिकल हो गये। बहुत वर्षों तक यह बिकलता का अनुभव उनको होता

****

रहा। अन्त में उन्होंने धरती के एक छोर में छोटे से वट वृक्ष के दर्शन किये जो उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हुआ। मुनि को उसका अवलम्बन मिल जाने से कुछ चैन का अनुभव हुआ। तब उस वृक्ष के ऊपरी भाग में उन्हें वटपत्र के डोने में लेटे हुये भगवान् बाल कृष्ण के दर्शन हुये- 'करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तं। वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि।।' उनके दर्शन पाकर मुनि का सब संताप सामाप्त हो गया और वे यथापूर्व अपने आश्रम में स्थित हो गये।

जनक जी भगवान् के ज्ञानी भक्त थे। उन की वन्दना गोस्वामी जी ने बालकाण्ड में इस प्रकार की है

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई।।

सीता जी के विवाह के बाद उनका प्रेम अभिन्न स्वरूप सीता राम में हो गया। तभी सीता जी को देख कर वह छिपा हुआ प्रेम हृदय में सागर की तरह उमड़ पड़ा।

यह धारना कुछ भ्रामक प्रतीत होती है कि ज्ञान को भक्ति का अवलम्बन चाहिये। ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है। ज्ञान ही समय समय पर भक्ति में परिणत हो जाता है॥ ३८५.३-४ ॥

इति षष्ठस्थल: ॥ ६ ॥

285.3-4 The sixth mention of Prayagraj occurs in Ayodhya kand Doha 285, when ruler of Mithila, king Janaka meets his daughter Sita in Chitrakoota. Janaka returned to his camp after meeting guru Vashishta and Shri Rama. He saw that his daughter Sita had come

from Shri Rama's camp with her mother. The king gave a fatherly hug to Sita who proved for Janaka to be a guest with powers to instil life in his devotion. A sea of love thus broke into the heart of Janaka. The mind of Janaka was overwhelmed as if it was Prayagraj. King Janaka was famous for his wisdom and knowledge of Self. His mind was predominantly tuned to knowledge, the Saraswati of Prayagraja but on seeing Shri Rama and Sita ji, the God personified, his knowledge melted into devotion. In other words there was a union of devotion, karma and knowledge constituting the Prayagraja of Janaka's mind. Janaka experienced an increasing love of Shri Sita Rama in his mind. The growing Banyan tree of Prayagraj is the love for Shri Sita and the divine child seen by Muni Markandey was the love of Rama in the mind of Janaka.

As the knowledge of Janaka's mind melted, it created a disturbance as was experienced by Muni Markandey when he was drowning into the waters of doom. The Muni then saw a Banyan tree and a divine child lying in a small bucket created by its leaves. The child was sucking the thumb of its foot by holding it with his hand. This picture made the Muni regain his poise and supreme peace. The knowledge of Janaka has therefore been compared with the Markandey Muni. Shri Janaka also experienced supreme peace in the love of Shri Sita Rama which manifested in his mind on seeing Sita.

BRIEF ACCOUNT OF MUNI MARKANDEY'S DELUSION

Muni Markandey was an aspirant and devotee of the Lord doing penances in a Hermit in Himalayas. He

****

observed Brahamcharya and all sorts of other disciplines to please the Lord. Pleased by his intense prayers and worship, Lord Nara–Narayana appeared before him. Muni was extremely happy and prostrated before the Lord. He sang their praises with devotion. The Lord told him to ask for a boon. The Muni was hesistant as his whole prayers were for the love of Lord's feet. On insistence from Lord, he prayed to let him have the vision of 'Maya' the illusory power of the Lord. Granting the wish, the Lord disappeared.

Many years rolled but the Muni got no vision of Maya. The Muni was busy as usual doing his penances. One day all of a sudden strong wind started blowing. The sky was overcast with deadly black clouds. It rained terribly with loud thunder. This continued till everything was submerged. The Muni started shunting impatiently from one direction to the other but he could not find a support. Instead he was cornered by the fearful beasts and crocodiles. The Muni suffered and suffered for may years in that condition. Finally, he saw a small banyan tree. As he held it for support it began to grow bigger and higher. The Muni got some relief. When he looked up the tree he saw an extremely beautiful divine child lying in a basket made out of leaves of the tree. The child was sucking his foot thumb holding the foot into his beautiful hand. The Muni got immense peace by seeing this picture. All his troubles and worries were gone. He returned to his original condition at the Hermit with the grace of the Lord. The Muni realised that all that had happened was Maya, which the Lord had revealed to him as per his wish. He thanked the Lord and started his penances with faith redoubled.

The wisdom of Janaka's mind on seeing Sita has therefore been compared by the saint poet to the long living Muni Markandey who regained his peace as soon he had the vision of the divine child. Janaka was a wise devotee of the Lord. His wisdom was known the world over but his devotion was hidden. The wisdom would however melt sometimes into devotion especially seeing the Lord in person. This happened when Shri Rama came to Mithila alongwith Rishi Vishwamitra just before the 'Dhanush Yagya'. After Marriage of his daughter Sita to Shri Rama, Janaka's deity of worship was the couple Sita Rama. So when he saw Sita in Chitrakoot his hidden devotion for Sita Rama was awakened and he was overwhelmed with the sweetness of divine love. His mind was not deluded like Muni Markandey.

Some people think erronously that knowledge needs the support of devotion. But there is no difference between knowledge and supreme devotion. One converts into the other in the lives of realised saints.

Thus ends Topic – 6



सातवाँ स्थल

लंका काण्ड दो. ११९से।

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा।
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोकं हरि लोक निसेनी ॥ ११९.४ ॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि ॥ ११९.५ ॥
दो० सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥ १२० क ॥
पुनि प्रभु आइ त्रिवेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥ १२० ख ॥
प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई।
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥ १२०.१ ॥
तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ।
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ॥ १२०.२ ॥
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ॥ १२०.३ ॥

यह प्रसंग प्रभु श्री राम द्वारा लंका विजय के अनन्तर श्री जानकी, लक्ष्मण व प्रिय सखाओं सहित पुष्पक विमान द्वारा अवध लौटने का है। आकाश मार्ग में ही प्रभु सीता जी को नीचे धरती के दृश्य दिखा रहे हैं।

भगवान् ने तीर्थपति प्रयाग को दिखाते हुये कहा कि इसके दर्शन मात्र से करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं। पुनः परम पावनि त्रिवेणी को भगवान् ने सीता जी को दिखलाते हुये उसकी महिमा का वर्णन किया कि यह शोक को हरने वाली और हरिलोक (ब्रह्मधाम, स्वधाम अथवा परमधाम) के लिए निसेनी (सीढ़ी) है ॥ ११९.४ ॥

TOPIC – 7 LANKA KANDA DOHA 119

119.4 This seventh topic occurs in Lanka Kanda when Shri Rama after conquering Lanka returned to Ayodhya

****

in 'Pushpak Viman'. On way in the sky Shri Rama showed to Shri Sita various places of interest. Shri Rama showed Yamuna and Ganga rivers and then showed 'Tirathpati Prayagraj' saying that mere seeing of the Prayagraja destroys sins of millions of births. Then he showed Sita ji the supreme purifier 'Triveni' which he said is a remover of worry and a ladder to the abode of God.

'फिर अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भवरोग का नाश करने वाली है'।

यहाँ अयोध्या जी की महिमा एवं प्रयागराज और त्रिवेणी की महिमा का तुलनात्मक निरीक्षण करना ठीक लगता है। तीर्थपति प्रयाग यानी गंगा, यमुना के एक साथ दर्शन से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। परम पावनि त्रिवेणी शोक को दूर करती है और हरिलोक की सीढ़ी है। इसे सविधि सेवन करना आवश्यक प्रतीत होता है जैसे कि सीढ़ी को ठीक तरह से लगाना पड़ेगा तभी उसका प्रयोग संभव है। फिर उसके एक एक अड्डे पर ठीक ठीक पाँव रखते हुये ऊपर की ओर चढ़ने से हरिलोक तक पहुँच सकते हैं। बीच से या ऊपर पहुँच कर लौट भी सकते हैं। अर्थात् ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग रूपी त्रिवेणी की साधना को जीवन में भली प्रकार अपनाने से भगवत्धाम तक पहुँचा जा सकता है।

अवधपुरी की महिमा अत्यन्त पावन है। यह त्रिविध ताप (आध्यात्मिक, अधिदैविक, अधिभौतिक) तीनों का नाश करके भव बन्धन से मुक्ति करा देती है। वहाँ निवास करना ही पर्याप्त लगता है।।११९.५।।

119.5 Lord Rama then asked Sita to look at the most purifying city of Ayodhya, which destroys the three types

****

of agonies caused by own body, elements of nature and the gods as well as the disease of rebirth.

Here it will be worthwhile to compare the glory of Prayagraj, Triveni and Ayodhya. While mere seeing of the rivers Yamuna and Ganga together (Prayagraj) destroys sin of the past millions of births, the dip into the Triveni removes all worries and it works like a ladder to reach the abode of God provided the ladder is properly held and the person using it rises step by step. Of course by default he can also climb down instead of going up. The message is to follow faithfully the disciplines of devotion, wisdom and selfless action represented by Triveni to rise in life with God as the goal.

The glory of the city of Ayodhya is the purest. Mere stay there destroys troubles of all kinds and leads to Salvation.

सीता जी और श्री राम ने मातृभूमि अवध को प्रणाम किया। प्रभु कितने कृपालू हैं जिस पुरी की महिमा के कारण वे स्वयं हैं उसको कितनी बड़ाई दे रहे हैं। यही प्रभु का स्वभाव है। प्रभु सजल नयन, पुल्कित तन हो बार बार हर्षित हो रहे हैं॥१२० क॥

120(a) Lord Rama and Sita saluted Ayodhya city, the birth place of Lord Rama. How kind is the Lord? The glory of city Ayodhya is because the Lord was born there but the Lord has not only sung its praises but also saluted it. This is the nature of the Lord. The Lord is overjoyed again and again, with his eyes wet and thrill in body to see Ayodhya.

फिर प्रभु ने विमान को उतारा और त्रिवेणी में हर्षित होकर स्नान किया और अपने वानर मित्रों के साथ ब्राह्मणों को नाना

प्रकार का दान देकर संतुष्ट किया (यानी शिव सेवा की) त्रिवेणी में स्नान करते उन्हें भरत जी का चिन्तन तीव्र रूप से हुआ ॥१२० ख ॥

120 (b)The Lord made the plane land at Prayagraj and he along with his monkey friends took holy dip into the Triveni and distributed variety of gifts to Brahmins. The Lord remembered Bharata very intensely after this.

प्रभु ने हनुमान जी को समझा कर कहा कि आप ब्रह्मचारी का रूप धारण कर अवधपुर जाओ और भरत जी को हमारी कुशल सुना कर वहाँ का समाचार लेकर लौट आओ ॥ १२०.१ ॥

120.1 The Lord briefed Hanuman and asked him to go to Ayodhya in the guise of Brahmin and inform Bharata of their safe coming and also bring their news on return.

पवनसुत हनुमान जी ने तुरत अयोध्या को प्रस्थान किया। तब प्रभु भरद्वाज मुनि के दर्शनों को गये। मुनि ने भगवान् की नाना प्रकार से पूजा की, स्तुति की और फिर आशीर्वाद भी दिया ॥ १२०.२ ॥

120.2 Hanuman the son of wind god at once set out for Ayodhya and the Lord went to see Muni Bhardwaj. The Muni worshipped the Lord in many ways, sang the Lords praises and then blessed him also.

मुनि चरणों में दोनों हाथ जोड़ नमस्कार कर प्रभु पुनः विमान पर चढ़ वहाँ से रवाना हुए ॥ १२०.३ ॥

इति सप्तमस्थलः ॥ ७ ॥

120.3 The Lord saluted the Muni with folded hands, boarded the plane and set out again.

Thus ends Topic – 7



आठवाँ स्थल

उत्तरकाण्ड दोहा ६४

प्रयाग राज का आठवाँ और अन्तिम प्रकरण मानस के उत्तर काण्ड के ६४ वें दोहे में आता है जब गरुड़ जी सद्गुरु काक भुसुण्डी के पास भगवान् शंकर की प्रेरणा से जाते हैं। प्रभु की परम प्रबल माया ने गरुड़ जी के हृदय में कई प्रकार के संशय उत्पन्न कर दिये जिन का चिन्तन कर के गरुड़ बड़े हैरान हुये। वे प्रथम नारद जी की शरण में गये। नारद जी उन्हें ब्रह्मा जी के पास जाने को कहा। ब्रह्मा जी ने उन्हें सीधा भगवान् शंकर जी के पास जाने की सलाह दी क्योंकि श्री राम की प्रभुताई को वे ही भली प्रकार से जानते हैं। शंकर भगवान् ने उनको सद्गुरु की सेवा में जाकर राम कथा सादर सुनने का परामर्श दिया। एतदर्थ उन्होंने काक भुसण्ड जी के पास उन्हें भेजा जहाँ निरंतर रामकथा वे सुनाते हैं। गरुड़ जी ने ऐसा ही किया। काक भुसण्ड जी ने उनकी विनीत प्रार्थना पर रामकथा सुनाना प्रारम्भ किया। उस कथा का संक्षेप संस्मरण गोस्वामी तुलसी दास जी ने मानस में किया है जिसे 'भुसण्डी रामायण' के नाम से भी भक्त पुकारते हैं और इसका पाठ भी करते हैं। वहाँ प्रभु के वन गवन प्रसंग में आया है–

बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥ ६४.२॥

काक भुसुण्डी जी ने प्रभु के वन गवन का वर्णन गरुड़ जी को सुनाया। तब केवट के अनुराग का प्रसंग सुनाया, गंगा जी को पार करके प्रभु प्रयाग राज पहुँचे, यह भी सुनाया। तब प्रयागराज में मुनि भरद्वाज जी के आश्रम में रात्रि निवास का प्रसंग सुनाया जिसका वर्णन हम अयोध्या काण्ड में कर आये हैं। भुसण्डी रामायण में केवल प्रयागराज में प्रभु के निवास की बात आई है। अन्य दो स्थानों 'पंचवटी' और

****

'प्रबर्षण पर्वत' पर भगवान् के रहने को 'बास' शब्द से गोस्वामी जी ने उद्धृत किया है। इसी से प्रयाग की महिमा गोस्वामी जी ने प्रकट कर दी है। जिस तीर्थ में भगवान् का निवास हो वही तीर्थराज कहलाने का हकदार है ॥६४.२॥

इति अष्टमस्थल: ॥८॥

TOPIC – 8 UTTAR KANDA DOHA 64

64.2 The eighth and last mention of Prayagraj in Ramcharitmanas is in Uttar Kand Doha No. 64 where Garura the eternal carrier of the Lord, at the behest of Lord Shiva, went to the Kakbhusundi (The Rishi with the body of a crow). The powerful Maya of the Lord had created many types of doubts in the mind of Garura about Lord Rama. Garura was feeling restless and went to Rishi Narada for clearing the doubts. Rishi Narada sent him to Lord Brahma who in turn directed him straight to Lord Shiva because nobody knew the secrets of Lord Rama better than Lord Shiva. Lord Shiva told him that the doubts would go after listening the stories of the Lord for some period from a learned person. Lord Shiva recommended him to go to Kakbhusundi who daily delivers discourse on Rama's life stories. Garura obeyed and came to him. He prayed to him to narrate the stories of Shri Rama. Kakbhusundi was pleased at his humility and love for Shri Rama's life stories. His daily discourse of Rama Katha heard by a glaxy of different enlightened birds was also scheduled to begin. The Katha was narrated from the beginning to the end almost on the lines of Ramacharitmanas. The saint poet Tulsidas ji has beautifully summarised the whole Rama

Katha which was told by Kakbhusundi to Garura. In Manas it is given in Uttar Kand from Doha 62 (b) to 68 (a) popularly known and recited by the devotees as 'Bhusandi Ramayana'. There in the topic beginning with exile of Shri Rama the mention of Prayagraj occurs. The Kakbhusundi described the journey of Shri Rama to the forest and the devotion of the boatman. Then he narrated crossing of the Ganga and journey to Prayagraj by the Lord. In Prayagraja the Lord stayed for the night at Muni Bhardwaj's Ashram. This stay of the Lord at Prayagraj has found mention in the summarised version, Bhusandi Ramayana and Prayajraj has been termed as Lord's home. There are two other mentions of Lord's staying at Panchwati and on 'Pravarshan' hill but these have not been termed as the home of the Lord though the stay at each of these places was much longer than just one night stay at Prayagraj. It is through this terminology that the saint poet has revealed the importance of Prayagraj. Truely a holy place which is the home of the Lord is fit to he called the king of holy places.

Thus ends Topic – 8



।।श्री गणेशाय नमः।।

अथ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस अन्तर्गत

सुन्दर काण्ड

श्लोक–

शान्तं शाश्वतमप्रयेमनघं निर्वाणशांतिप्रदं–
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं ,
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम् ।। १ ।।
नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये, सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे, कामादि दोषरहितं कुरु मानसं च ।। २ ।।
अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं, दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।३ ।।

जामवन्त के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेउ तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई।।
जब लगि आवौं सीतहिं देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेखी।।
यह कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।
सिन्धु तीर एक सुंदर भूधर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर।।
बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी।।
जेहिं गिरि चरण देइ हनुमन्ता। चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता।।
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना।।
जल निधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी।।
दोहा– हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम ।।१ ।।

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा।।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता।।
आज सुरन्ह मोहिं दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा।।
राम काज करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं।।
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहिं कहेउ हनुमाना।।
जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा।।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।।
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा।।
शत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा।।
दोहा- राम काजु सब करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ।।२।।
निसिचरि एक सिन्धु महँ रहई। करि माया नभु के खग गहई।।
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं।
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि विधि सदा गगनचर खाई।।
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुत सुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा।।
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा।।
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए।।
सैल बिसाल देखि एक आगे। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे।।
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई।।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी।।
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा।।

****

छन्द- कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥१॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥२॥
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥३॥

दोहा- पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पइसार॥३॥

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निन्दरी॥
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि करि बिनय ससंका॥
जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा
बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउ नयन राम कर दूता॥

दोहा- तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥४॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कौसलपुर राजा।।
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई।।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवानां।।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।
सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही।।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।
दोहा- रामायुध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ, देखि हरष कपिराइ ।।५।।
लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषण उठि तहँ आए।।
करि प्रणाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।।
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम्ह राम दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।।
दोहा- तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुन ग्राम ।।६।।
सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।।
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।।

सुनहु बिभीषन प्रभु के रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं विधि हीना।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।
दोहा- अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर ।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ।।७।।
जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी।।
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य विश्रामा।।
पुनि सब कथा विभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता।।
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।
करि सोइ रूप गयऊ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा।।
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।।
दोहा- निज पद नयन दिएँ मन, राम पद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, देखी जानकी दीन ।।८।।
तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई।।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा।।
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा।।
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकाशा। कबहुँ नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।

****

दोहा- आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान ।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसिआन ।।९।।
सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहंउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी।।
स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।
चन्द्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं।।
सीतल निसित बहिस बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बुलाई। सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई।।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।।
दोहा- भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि बृन्द ।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द ।।१०।।
त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।।
सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दस सीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि बिधि सो दच्छिण दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी।।
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं।।
दोहा- जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच ।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच ।।११।।
त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई।।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि।।
निसि न अनल मिलि सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटहि न सूला।।
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हत भागी।।
सुनहु बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।।
सोरठा- कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।१२।।
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदयँ अकुलानी।।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया ते असि रचि नहिं जाई।।
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।
रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।
लागीं सुनै श्रवण मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई।।
श्रवनामृत जेहिं कथा सुनाई। कही सो प्रगट होति किन भाई।।
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठि मन बिस्मय भयऊ।।
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।।
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भई संगति जैसें।।
दोहा- कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास।।१३।।

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी।।
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना।।
अब कहु कुसल जाऊँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी।।
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।।
सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदुगाता।।
बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तब दुख दुखी सुकृपा निकेता।।
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेम राम कें दूना।।
दोहा- रघुपति कर संदेसु अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर ।।१४।।
कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता।।
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मनु मोरा।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं।।
प्रभु सन्देसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तनु सुधि नहिं तेही।।
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुख दाता।।
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई।।
दोहा- निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु ।।१५।।
जो रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंब रघुराई।।
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की।।

****

अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।।
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।
मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनु कपि प्रगट कीन्ह निज देहा।।
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवन सुत लयऊ।।
दोहा- सुनु माता साखामृग, नहिं बलबुद्धि बिसाल ।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हिं, खाइ परम लघु ब्याल ।।१६।।
मन सन्तोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
करहु कृपा प्रभु असि सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।
बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा।।
अब कृतकृत्य भयऊँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता।।
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा।।
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी।।
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जो तुम सुख मानहु मनमाहीं।।
दोहा- देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरन हृदयँ धरि, तात मधुर फल खाहु ।।१७।।
चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे।।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहि असोक बाटिका उजारी।।
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।।

****

सुनि रावण पठए भट नाना। तिन्हिं देखि गर्जेउ हनुमाना।।
सब रजनीचर कपि संहारे। गये पुकारत कछु अधमारे।।
पुनि पठयउ तेहि अच्छ कुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।
दोहा- कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि ।
कछु पुनि जाई पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि ।।१८।।
सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाथ बलवाना।।
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही।।
चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।।
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।
रहे महा भट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।
तिन्हहिं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा।।
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई।।
उठि बहोरि कीन्हिसि बहुमाया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।
दोहा- ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा, कपि मन कीन्हि बिचार ।
जौं न ब्रह्म सर मानउँ, महिमा मिटइ अपार ।।१९।।
ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संहारा।।
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ।।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी।।
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा।।
कपि बंधन सुनि निसचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए।।
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाई कछु अति प्रभुताई।।
कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका।।

दोहा- कपिहि बिलोकि दसानन, बिहसा कहि दुर्बाद ।
सुत बध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदयँ विषाद ।।२०।।
कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहिके बल घालेहि बन खीसा।।
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।
मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा।।
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।।
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन।।
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्हसे सठन्ह सिखावनु दाता।।
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा।।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली।।
दोहा- जाके बल लवलेस तें, जितेउ चराचर झारि ।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि ।।२१।।
जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।।
समर बालिसन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा।।
खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।।
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।।
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारि।।
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी।।
जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै।।
दोहा- प्रनतपाल रघुनायक, करुना सिन्धु खरारि ।
गएँ सरण प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ।।२२।।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।
ऋषि पुलस्ति जस बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका।।
राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी।।
राम बिमुख सम्पति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।।
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं।।
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। राम बिमुख त्राता नहिं कोपी।।
संकर सहस विष्णु अज तोही। राखि न सकहिं राम कर द्रोही।।
दोहा- मोहमूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक, कृपा सिन्धु भगवान ।।२३।।
जदपि कही कपि अतिहित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी।।
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी।।
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।।
उलटा होइहिं कह हनुमाना। मति भ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।
सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना।।
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन सहित बिभीषनु आए।।
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता।।
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मन्त्र भल भाई।।
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर।।
दोहा- कपि कें ममता पूँछ पर, सबहि कहेउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ।।२४।।
पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि।।
जिन्हि कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई।।
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।।
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना।।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।
कौतुक कहँ आए पुर बासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।।
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।।
पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघुरूप तुरन्ता।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारी।।

दोहा- हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास।।२५।।

देहु बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।।
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा।।
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई।।
साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।
जारा नगर निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।
ता कर दूत अनल जेहिं सिरजा। जरा न सो तेहि कारण गिरिजा।।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।

दोहा- पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें, ठाढ़ भयउ कर जोरि।।२६।।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा।।
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।
कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा।।
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहिं समझाएहु।।
मास दिवस महँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।।
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना।।
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती।।

****

दोहा- जनक सुतहिं समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ।।२७।।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी।।
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा।।
हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना।।
मुख प्रसन्न तनु तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा।।
मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी।।
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा।।
तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए।।
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे।।

दोहा- जाइ पुकारे ते सब, बन उजार युबराज ।
सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आए प्रभु काज ।।२८।।

जौ न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई।।
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा।।
आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा।।
पूँछेउ कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काज बिसेषी।।
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना।।
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहि चलेऊ।।
राम कपिन्ह जब आवत देखा। किए काज मन हरष बिसेषा।।
फटिक सिला बैठे दोउ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई।।

दोहा- प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुंज ।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद कंज ।।२९।।

जामवन्त कह सुन रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम दाया।।
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर।।
सोई बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर।।

प्रभु की कृपा भयऊ सब काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू।।
नाथ पवन सुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।
पवन तनय के चरित सुहाए। जामवन्त रघुपतिहिं सुनाए।।
सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए।।
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्व प्रान की।।
दोहा- नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहिं बाट ।।३०।।
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही।।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी।।
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बन्धु प्रनतारति हरना।।
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।
बिरह अनल तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी।।
सीता कै अति बिपति विसाला। बिनहिं कहे भलि दीनदयाला।।
दोहा- निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति ।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुजबल खलदल जीति ।।३१।।
सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना।।
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही।।
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी।।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सुनमुख होई न सकत मन मोरा।।

****

सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।।
दोहा- सुनि प्रभु बचन विलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत ।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ।।३२।।
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर।।
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा।।
कहु कपि रावण पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना।।
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा।।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।
दोहा- ता कहुँ प्रभु कछु आगम नहिं, जा पर तुम्ह अनुकूल ।
तव प्रभावँ बड़वानलहि, जारि सकइ खलु तूल ।।३३।।
नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।
उमा राम सुभाव जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा।।
सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा।।
तब रघुपति कपिपतिहिं बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा।।
अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे।।
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी।।
दोहा- कपिपति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ ।।३४।।

****

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा।।
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना।।
राम कृपा बल पाइ कपिन्दा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा।।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना।।
जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।।
प्रभु पयान जाना वैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।
चला कटकु को बरनै पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा।।
नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी।।
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।।

छंद- चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे।।
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कौसलनाथ गुन गन गावहीं।।१।।
सहि सक न भार उदार अहिपित बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई।।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।।२।।

दोहा- एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर।।३५।।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका।।
निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसचर कुल केर उबारा।।
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई।।
दूतिन्ह सन सुनि पुरजनबानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी।।
रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी।।

कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू।।
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई।।
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।।
दोहा- राम बान अहि गन सरिस, निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक ।।३६।।
श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत विदित अभिमानी।।
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा।।
जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई।।
कम्पहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा।।
अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई।।
मन्दोदरी हृदयँ कर चिन्ता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता।।
बैठेउ सभा खबरि असि पाई। सिन्धु पार सेना सब आई।।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।।
जितेहु सुरासुर तव श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं।।
दोहा- सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास ।।३७।।
सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई।।
अवसर जानि बिभीषन आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा।।
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन।।
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता।।
जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं।।
चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई।।
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ।।

****

दोहा- काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत ।।३८।।

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी।।
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।।
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा।।
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही।।
सरन गए प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा।।
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझि जिय रावन।।

दोहा- बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस ।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ।।३९क।।
मुनि पुलिस्त निज सिष्य सन, कहि पठई यह बात ।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसरु तात ।।३९ख।।

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना।।
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।।
रिपु उतकर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ।।
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी।।
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।।
कालराति निसचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।

दोहा- तात चरन गहि मागहुँ, राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ।।४०।।

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी।।
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।।
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं।।
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
उमा सन्त कइ इहइ बड़ाई। मन्द करत जो करइ भलाई।।
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहिमारा। रामु भजे हित नाथ तुम्हारा।।
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ।।
दोहा- राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि।।४१।।
अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं।।
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी।।
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।।
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई।।
दोहा- जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन नयनन्हि अब जाइ।।४२।।
एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा।।
कपिन्ह बिभीषन आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा।।
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।।
कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा।।
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बांधि मोहि अस भावा।।

****

सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भय हारी।।
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना।।
दोहा- सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हि बिलोकत हानि ।।४३।।
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू।।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।
पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा।।
जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते।।
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।
दोहा- उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत ।
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगद हनू समेत ।।४४।।
सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर।।
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता।।
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।।
भुज प्रलम्ब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन।।
सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।।
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता।।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता।।
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।।
दोहा- श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ।।४५।।
अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा।।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी।।
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुशल कुठाहर बास तुम्हारा।।
खल मंडलीं बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहइ केहि भाँती।।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्ह जानि जनदाया।।

दोहा- तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ।।४६।।

तबलगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना।।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा।।
ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी।।
तब लगि बसत जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।।
अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे।।
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।।
मैं निसचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहिं काऊ।।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरष हृदयँ मोहि लावा।।

दोहा- अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज ।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेब्य जुगल पद कंज ।।४७।।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।।
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना।।
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कैं ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धन जैसें।।
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें।।

****

दोहा- सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ।।४७।।

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें।।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा।।
सुनत बिभीषन प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी।।
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा।।
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अन्तरजामी।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मांगा तुरत सिन्धु कर नीरा।।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा।।

दोहा- रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचण्ड ।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखण्ड ।।४९(क)।।
जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिएँ दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।४९(ख)।।

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना।।
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा।।
पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी।।
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।।
सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।।
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।।
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक।।
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई।।

दोहा- प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि ।
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु कपि धारि ।।५०।।

****

सखा कही तुम नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई।।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा।।
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा।।
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।
सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा।।
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिन्धु समीप गए रघुराई।।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई।।
जबहिं बिभीषण प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए।।

दोहा- सकल चरित तिन्ह देखे, धरें कपट कपि देह ।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, सरनागत पर नेह ।।५१।।

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ।।
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने।।
कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर।।
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए।।
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे।।
जो हमार हर नासा काना। तेहि कौसलाधीस कै आना।।
सुनि लछिमन सब निकट बुलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए।।
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती।।

दोहा- कहेहु मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देसु उदार ।
सीता देइ मिलहु न त, आवा कालु तुम्हार ।।५२।।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा।।
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए।।
बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता।
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।।
करत राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।।
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई।।

****

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा।
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह कै हृदयँ त्रास अति मोरी।।
दोहा- कि भइ भेंट कि फिरि गए, श्रवन सुजसु सुनि मोर ।
कहसि न रिपुदल तेज बल, बहुत चकित चित तोर ।।५३।।
नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा।।
रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना।।
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे।।
पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई।।
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी।।
जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा।।
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल तेज बिसाला।।
दोहा- द्विबिद मयंद नील नल, अंगद गद बिकटासि ।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवंत बलरासि ।।५४।।
ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन सम कोटिन्ह गनइ को नाना।।
राम कृपा अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहिं गिनहीं।।
अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बन्दर।।
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रण माहीं।।
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा।।
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला।।
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा।।
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका।।
दोहा- सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम ।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम ।।५५।।
राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई।।
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहिं पूँछेउ नय नागर।।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मांगत पंथ कृपा मन माहीं।।
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा।।
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई।।
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई।।
सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें।।
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी।।
रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।।
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन।

दोहा- बातन्ह मनहि रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस ।।
की तजि मान अनुज इव, प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग ।।५६।।

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई।।
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा।।
कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृत अभिमानी।।
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा।।
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ।।
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरही।।
जनकसुता रघुनाथहिं दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे।।
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही।।
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिन्धु रघुनायक जहाँ।।
करि प्रनाम निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई।।
रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राच्छस भयउ रहा मुनि ग्यानी।
बन्दि रामपद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा।।

दोहा- बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ।।५७।।

****

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू।।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीती।।
ममता रत सन ग्यान कहांनी। अति लोभी सन बिरति बखानी।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा।।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।।
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना।।
दोहा- काटेहिं पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहिं पइ नव नीच ।।५८।।
सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन कइ नाथ सहज जड़ करनी।।
तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाए।।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई।।
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही।।
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई।।
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई।।
दोहा- सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ ।।५९।।
नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाइ रिषि आसिष पाई।।
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई।।
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ।।
एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी।।

****

सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा।।
देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी।।
सकल चरित कह प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा।।

छंद- निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ।।
सुख भवन संसय समन दमन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि सन्तत सठ मना।।

दोहा- सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।
उपकार सुग्रीवहिं सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु बिना जलजान।।६०।।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
पञ्चमः सोपानः समाप्तः।
।।सुन्दर काण्ड समाप्त।।

श्री हनुमान चालीसा

दोहा- श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि।।
बुद्धि हीन तनु जानिके, सुमिरौं पवनकुमार।
बल-बुद्धि-विद्या देहु मोहिं हरहु कलेस विकार।।

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर।।
राम दूत अतुलित बल धामा। अंजनिपुत्र पवनसुत नामा।।
महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी।।
कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुण्डल कुंचित केसा।।
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै। कांधे मूँज जनेऊ साजै।।
संकर सुवन केसरी नन्दन। तेज प्रताप महा जग बन्दन।।
बिद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर।।

****

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया।।
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा।।
भीम रूप धरि असुर संहारें। रामचन्द्र के काज सँवारे।।
लाय सजीवन लखन जियाए। श्रीरघुबीर हरषि उर लाए।।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई।।
सहस बदन तुम्हरो जस गाव ज्अस। कहि श्रीपति कंठ लगावैं।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा।।
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते।।
तुम्ह कीन्हा। राम मिलाए राज पद दीन्हा।।
तुम्हरो मन्त्र बिभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना।।
जुग सहस्त्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू।।
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लघि गये अचरज नाहीं।।
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते।।
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे।।
सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहू को डर ना।।
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हांक ते कांपै।।
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै।।
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरन्तर हनुमत बीरा।।
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै।।
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन्ह के काज सकल तुम साजा।।
और मनोरथ जो कोइ लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै।।
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा।।
साधु सन्त के तुम रखवारे। असुर निकन्दन राम दुलारे।।
अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता।।
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा।।
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै।।

अन्त काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जनम हरि भक्त कहाई।।
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई।।
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।।
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं।।
यह सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बन्दि महा सुख होई।।
जो यह पढ़े हनुमान चलीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा।।
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय मँह डेरा।।
दोहा- पवन तनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप।।

अथ हनुमानाष्टक

मत्तगयन्द छन्द

बालि समय रबि भक्षि लियो तब, तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।
ताहि सों त्रास भयो जग को, यह संकट काहु सों जात न टारो।।
देवन आनि करी बिनती तब, छाड़ि दियो रबि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जग में कपि, संकटमोचन नाम तिहारो।१।
बालि की त्रास कपीस बसै, गिरि जात महाप्रभु पन्थ निहारो।
चौंकि महा मुनि साप दियो तब, चाहिए कौन बिचार बिचारो।।
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु, सो तुम दास के सोक निवारो। को०२।
अंगद के संग लेन गये सिय, खोज कपीस यह बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौं हम सो, जु बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो।।
हेरि थके तट सिन्धु सबै, तब लाय सिया सुधि प्राण उबारो।३।
रावण त्रास दई सिय को, सब राच्छसि सों कहि सोक निवारो।।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु, जाय महा रजनीचर मारो।।
चाहत सीय असोक सों आगि सु, दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो। को०४।
बान लग्यो उर लछिमन के, तब प्रान तजे सुत रावण मारो।
लै गृह बैद्य सुषेण समेत, तबै गिरि द्रोण सुबीर उपारो।।

आनि सजीवन हाथ दई तब, लछिमन के तुम प्राण उबारो। को०५।
रावन जुद्ध अजान कियो तब, नाग की फाँस सबै सिर डारो।
श्रीरघुनाथ समेत सबै दल, मोह भयो यह संकट भारो।।
आनि खगेस तबै हनुमान जु, बन्धन काटि सुत्रास निबारो। को०६।
बन्धु समेत जबै अहिरावन, लै रघुनाथ पताल सिधारो।
देबिहीं पूजि भली बिधि सों बलि, देउ सबै मिलि मन्त्र उचारो।।
जाय सहाय भयो तब ही, अहिरावन सैन्य समेत संहारो।। को०७।।
काज किये बड़ देवन के तुम, बीर महाप्रभु देखि बिचारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को, जो तुमसों नहिं जात है टारो।।
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु, जो कछु संकट होय हमारो। को०८।।
दोहा- लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लंगूर।
बज्र देह दानव दलन, जय जय जय कपि सूर।।

आरती श्री हनुमान जी की

आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्टदलन रघुनाथ कला की।। टेक।।
जाके बल से गिरिबर काँपै । रोग दोष जाके निकट न झाँपै।।१।।
अंजनि पुत्र महा बलदाई । संतन के प्रभु सदा सहाई।।२।।
दे बीरा रघुनाथ पठाये । लंका जारि सिया सुधि लाये।।३।।
लंका सो कोट समुद्र-सी खाई । जात पवनसुत बार न लाई।।४।।
लंका जारि असुर संहारे । सियारामजी के काज संवारे।।५।।
लक्ष्मण मूर्छित पड़े सकारे । आनि संजीवन प्रान उबारे।।६।।
पैठि पाताल तोरि जम-कारे । अहिरावण के भुजा उखारे।।७।।
बायें भुजा असुर दल मारे । दहिने भुजा संतजन तारे।।८।।
सुर नर मुनि आरती उतारे । जै जै जै हनुमान उचारे।।९।।
कंचन थार कपूर लौ छाई । आरति करत अंजना माई।।१०।।
जो हनुमान जी की आरती गावै । बसि बैकुंठ परमपद पावै।।१।।
लंक विध्वंस किये रघुराई, तुलसीदास स्वामी कीरति गाई ।।
।। इति श्री हनुमान जी की आरती ।।

****

श्रीरामावतार

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी।।
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
मायागुनग्यानातीत अमाना बेदपुरान भनंता।।
करुना सुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरपिद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

श्रीराम-स्तुति

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कँज-मुख, करकंज पद कंजारुणं॥
कँदर्प अगणित अमित छवि नवनील-नीरद सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग बिभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित खरदूषणं॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजन।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खलदल-गंजनं॥



सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम

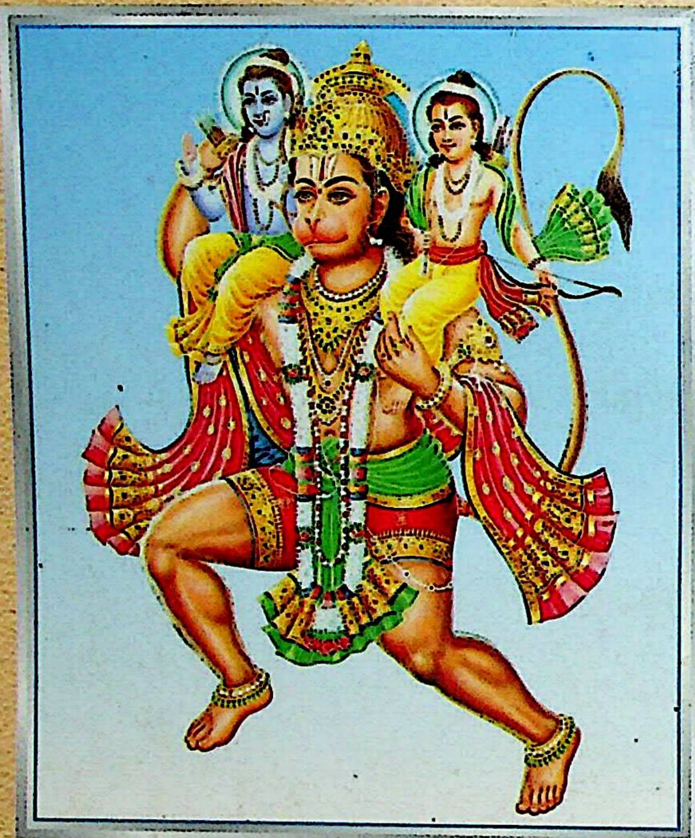


भगवान् शंकर जगदम्बा पार्वती को रामायण सुनाते हुए



अखण्डसौभाग्यवती स्वर्गीय श्रीमती राजरानी हाँडा

प्रयागराज द्वादशवर्षीय कुम्भ पर्व पर प्रकाशित



भगवान् श्री राम एवं लक्ष्मण हनुमान जी के कन्धों पर विराजित

सौजन्य :

श्री शिवस्वरूप हांडा
सुपुत्र
श्री बलवंत राज हांडा
हांडा सोप फैक्ट्री, पहाड़ गंज, नई दिल्ली